भूत, जादू और धर्म

— विज्ञान के आइने में

शालिग्राम शिला का विज्ञान रहस्य
प्रयाग की रहस्यमयी सरस्वती
भूत कैसे पकड़ता है
साईबाबा, अलौकिकता और मैजिक
आग पर कैसे चलते हैं
दाँत का कीड़ा मंत्र सुनता है
मत्स्य कन्या का रहस्य
पुरुष वृक्ष और स्त्री वृक्ष
आदि २४ लेख

समग्र प्रकाशन

भूत, जादू और धर्म

— विज्ञान के आइने में

समग्र प्रकाशन
C/o बहादुर उराँव, ग्राम–राखा, असनतलिया
पो० चक्रधरपुर, जि० सिंहभूम

विषय सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना	ए०के० राय, भू०पू० सांसद	
१ शिवलिंग का प्रकट होना और रोती हुई प्रतिमा	—	— १
२ मंदिर में धोखाधड़ी	— या पेरेलमैन	— ६
३ शालिग्राम शिला का विज्ञान रहस्य	— श्री कृष्ण चैतन्य ठाकुर और अशोक बंद्योपाध्याय	— ७
४ अहल्या उद्धार	—	— १४
५ प्रयाग की रहस्यमयी सरस्वती	— प्रबीर गुप्त	— १६
६ माँ दुर्गा का आदि और अंत	— श्री कृष्ण चैतन्य ठाकुर	— २०
७ महाकाल पर्वत में महादेव की जटा	— हीरक दास	— २५
८ हंस और दूध-पानी का रहस्य	— श्री कृष्ण चैतन्य ठाकुर	— २८
९ बड़े दिन का पेड़	— पवन मुखोपाध्याय	— २९
१० मत्स्य कन्या का रहस्य	— हीरक दास	— ३०
११ हाथी का बेल खाना	— श्री कृष्ण चैतन्य ठाकुर	— ३२
१२ माला बढ़ती है तो रोग दूर होता है	— अशोक बंद्योपाध्याय	— ३३
१३ पुरुष वृक्ष और स्त्री वृक्ष	— सुधींद्र आचार्य चौधरी	— ३९
१४ खराब हवा की कहानी	— अनसूया मुखोपाध्याय	— ४१
१५ भूत है या हिस्टीरिया	— सोमनाथ भट्टाचार्य	— ४३
१६ रात की पुकार	— धीरेन गांगुली	— ४९
१७ दांत का कीड़ा मंत्र सुनता है	— सवित्र मोहन राय	— ५१
१८ कुम्हड़ा का बीज बना दांत का कीड़ा	—	— ५६
१९ साईबाबा, अलौकिकता और मैजिक	— अजय कुमार और निर्मल मित्र	— ५७
२० आग पर कैसे चलते हैं	— मणींद्र नारायण मजूमदार	— ६२
२१ रासायनिक तरकीब और आग पर चलने की करामात	—	— ६८
२२ आग वाले सन्यासी का गुप्त मंत्र	— मणींद्र नारायण मजूमदार	— ७०
२३ मनुष्य आग पर कैसे चलता है	— शंकर राव	— ७३
२४ अलौकिकता बनाम पॉल कुरतज	— सिद्धार्थ घोष	— ७६

अप्रैल १६८६ में प्रथम हिन्दी संस्करण

"विज्ञान अविज्ञान अपविज्ञान" का हिन्दी अनुवाद
(उत्स मानुष संकलन—१)

अनुवादक : झरना दे
सीताराम शास्त्री

प्रस्तावना : ए० के० राय, क्रांतिकारी श्रमिक नेता और भूतपूर्व सांसद

प्रकाशक : समग्र प्रकाशन
C/o बहादुर उराँव
ग्राम—राखा, असनतलिया
पोस्ट—चक्रधरपुर
जिला—सिंहभूम

मुद्रक : बिहार प्रिन्टर्स
जैन मन्दिर, रोड
डोरन्डा, राँची - ८३४००२

मूल बंगला प्रकाशक : पवन मुखोपाध्याय
बी० डी० ४६४ साल्ट लेक कलकत्ता - ७०००६४

संस्करण (बंगला) : फरवरी, ८३

मूल्य १० रुपये।

प्रस्तावना

मानव संस्कृति में हमेशा ही दो धारायें रहीं। एक अंधविश्वास की और दुसरी मुक्त विचार की। एक ने कहा मानो, दुसरे ने कहा जानो। पहली ने स्थितावस्था की ओर और दुसरी ने परिवर्तन की ओर लोगों को खींचा। अंधविश्वासवाद और युक्तिवाद के बीच संघर्ष शुरू से ही मानव समाज की प्रगति का एक कारण रहा।

हिन्दु संस्कृति के स्रोत वेद एवं पुराण में भी दो विचार धाराओं का संघर्ष देखने को मिलता हैं। एक में सृष्टि के कारण के रुप में एक विराट पुरुष की कल्पना की गयी, जिसके मुंह से ब्राह्मण, भूजाओं से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। सारे नियमों और ज्ञान का कारण वह विराट पूरुष ही था। और मानव शक्तिहीन और दृष्टिहीन। इसीलिए उसी विराट पुरुष पर निर्भर होकर चलना हैं। यही सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञानी, अविनाशी अस्तित्व ईश्वर हैं। गीता में भी इसी की चर्चा हैं। इसीलिए पार्थ को अंतिम आदेश था : "सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज"। सवाल करना छोड़ो और मेरा अनुसरण करो। साथ ही एक और धारा थी जिसने लोगों को प्रश्न करना सिखाया। वेद के नासदीय सुक्तम् में शिशु मानव प्रश्न कर रहा हैं : यह सृष्टि कहां से आयी और कहां जा रही हैं ? "सो अंग वेद, यदि वा न वेद"। शायद वेद जानता हो, शायद नहीं भी जानता हो। यह संशयवाद बाद में चल कर सांख्य और लोकायत दर्शनों के माध्यम से विकसित हुआ, जिन्होंने अंत में सारे संस्कारों तथा ईश्वर के अस्तित्व को ही चुनौती दी।

इन दो धाराओं को संक्षेप में दो नियमों के रुप में रखा जा सकता हैं। एक ईश्वर का नियम, दूसरा प्रकृति का नियम। एक का आधार धर्म हैं तो दूसरे का विज्ञान। एक का भक्ति तो दूसरे का युक्ति। इन दो धाराओं के बीच की लड़ाई हर युग में, और हरेक देश में चलती रही। कभी संस्कार ने जीता तो कभी विचार ने। कभी धर्म ने तो कभी विज्ञान ने। दोनों में समन्वय की भी कोशिश हुई। कभी स्थितावस्था की पकड़ ने और जोर पकड़ा तो कभी परिवर्तन की लहर आयी। भारत में बौद्धयुग इसी प्रकार की एक लहर थी। लोकायत दर्शन, कपिल का सांख्य, कनाद का अनुविज्ञान, आर्यभट्ट का अनुसंधान, सुश्रुत की शल्य चिकित्सा ने हजारों वर्ष भारत को विश्व सभ्यता की अगली पंक्ति में खड़ा कर दिया था। लेकिन बाद में पुराण, भाग्यवाद, रहस्यवाद फिर से चिंतन को धूमिल करके समाज को पीछे ले गये।

जो भारत के लिए सत्य था, वही युरोप, चीन तथा अरब के सिलसिले में भी सच था। थेलस, सुकरात और अरस्तु के युक्तिवाद और यूनान के विज्ञान को युरोप के इसाई धर्म का ईश्वरवाद ध्वस करने पर तुला हुआ था, जिसने वहाँ ५००ई० से १५००ई० तक एक हजार वर्षो के अंध संस्कार के मध्य युग को लाया, जहाँ लोग बिना सवाल किये स्वर्ग और नरक के कल्पित भय के शासन में जीवन व्यतित करते थे। अरब की मुस्लिम

सभ्यता ने प्राचीन यूनानी विज्ञान की रक्षा की थी। अरबी में अनुवाद होने के चलते भारतीय और यूनानी विज्ञान बच गये। उस वक्त इस्लाम शिखर पर था। अटलान्टिक महासागर से लेकर हिन्द महासागर तक उनका झंडा लहरता था। बाद में, युरोप में इटली से लियोनार्दो द बिन्सी, कोपरनिकस, गैलीलियों के जरिए जब फिर से युक्तिवाद और विज्ञान उभर कर आये तो अरबी में संरक्षित प्राचीन यूनानी विज्ञान को फिर से लैटिन में अनुवाद किया गया। लेकिन यह लड़ाई युरोप में आसानी से नहीं जीती गयी। बाइबल की प्राचीन मान्यता को तोड़ कर "पृथ्वी सूर्य को केन्द्रित करके घुमता है" के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने के लिए गैलीलियों को जेल में रहना पड़ा तथा लियोनार्दो और ब्रूनों को जान देना पड़ा। यह एक वैचारिक क्रांति थी जिसने फ्रांसिस बेकन के संशयबाद और डार्विन के विकासवाद के माध्यम से आज अपनी अंतिम जीत हासिल की।

सत्रहवीं सदी से योरप में जब युक्तिवाद विजय प्राप्त करता आ रहा है तब भारत, अरब, चीन समेत तमाम एशियाई संस्कृति पर अंधसंस्कार हावी होता रहा, जिससे चीन को छोड़कर बाकी इलाके आज भी मुक्त नहीं हो पाये हैं। इसलिए छोटे से इसरायल के सामने तमाम अरब देश आज पराजित हैं। भारत में स्थिति और भी अजीब है। यहाँ आज भी हिन्दुओं पर राम जानकी रथ हावी हैं, और मुसलमान शाहबानों के मामले को लेकर 'शरीयत बचाओ' पर तुले हुए हैं। हम तमाम अंधविश्वासों और परंपराओं के साथ ही कंप्यटर को लेकर इक्कीसवीं सदी में घुसना चाहते हैं।

(२)

योरप में पहले सामाजिक क्रांति आयी, उसके बाद औद्योगिक क्रांति और अन्त में राजनैतिक क्रांति। मार्टिन लूथर और स्टीवेन्सन, फिर उसके बाद रूसो, वाल्टेयर और मार्क्स। जनवाद, समाजवाद, लोकतंत्र आदि का चितन इसी क्रम से उभर कर आये। लेकिन भारत में इतिहास इसी रूपमें विकसित नहीं हो पाया। और आज की स्थिति में यह संभव भी नहीं है। इसका एक कारण यह है कि जिस युगमें योरपमें युक्तिवाद और विज्ञान फैले तब यह देश उपनिवेश था। आजादी नहीं थी। साम्राज्यवादी शक्तियाँ यहाँ के अंधविश्वासों को संरक्षण देकर अपना राज चलाना चाहते थे। ऐसी बात नहीं कि सुधार के प्रयास नहीं हुए। राम मोहन, विवेकानन्द, रानाडे, फूले और सैयद अहमद आये, लेकिन उनका असर एक सीमा तक ही रहा। समाज के ऊपर के कुछ हिस्से का ही रंग बदला, लेकिन उसे गहराई तक आंदोलित नहीं कर सका। एक सामंती तथा औपनिवेशिक अर्थ व्यवस्था के साथ समझौता करते हुए एक रीढ़हीन पूंजीवाद का विकास होना शुरू हुआ, जो कोई सामाजिक क्रांति नहीं ला पाया। कम्यूनिस्ट घोषणा पत्र में मार्क्स ने पूंजीवाद की एक क्रांतिकारी भूमिका के बारे में लिखा था, जिसने अतीत के तमाम सामंती अंधसंस्कारों और रूढ़िवाद के संकीर्ण दायरे को तोड़ कर मानव सभ्यता के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान किया था। लेकिन भारत में ऐसा कुछ नहीं हुआ। यहाँ तमाम सामंती संस्कारों, परंपराओं और कुरीतियों के साथ ही पूंजीवादी विकास शुरू हुआ। कुछ लोगों ने अपने को समाजवादी तो क्या, मार्क्सवादी कहकर भी घोषणा की। लेकिन हर जगह दोहरा चरित्र बना रहा। एक सामंती शरीर ने पूंजीवादी पोशाक पहना, किसी ने लाल टोपी भी लगा ली। इसलिए आज जात पात, तिलक - दहेज की मान्यता के साथ समाजवादी पाये जाते हैं और मार्क्स वादी लोग ताबीज और तांत्रिक अंगूठियाँ पहने हुए देखे जा सकते हैं। घर में पूजा करते हैं, बाहर में क्रांति करते हैं। चाहते हैं कि महिलायें राजनीति करें, लेकिन खुद की पत्नी न करे। सामाजिक और राजनैतिक जीवन के बीच का यह विरोध आज विकट रूप धारण करके किसी भी सही विकास में प्रधान बाधा बन गया है।

लेकिन समस्या इतनी ही नहीं है। समस्या और भी गंभीर बन गयी है, क्योंकि घड़ी का कांटा उल्टा घूमने लगा है। युक्तिवाद की प्रगति धीमी चलते - चलते अब कुछ दिनों से प्रगति उल्टी दिशा में हो रही है। पुराने भगवान जब पुराने ढंग से अंधविश्वासों और पूजा-पाठ को लेकर लोगों को आकर्सित नहीं कर पा रहे हैं तब नये किस्म के भगवान और नये रहस्यवाद की सृष्टि हुई है जो आधुनिक पूंजीवादी मानसिकता को खुराक जुटा रहा है। भगवान रजनीश, बालयोगेश्वर, साईबाबा आदि इस प्रकार के नये भगवान एक नये सांस्कृतिक प्रदूषण के केन्द्र बने हुए हैं। भारत इस प्रकार के सांस्कृतिक प्रदूषण का निर्यात भी कर रहा है। और यह प्रदूषण इतना जोरदार है कि आध्यात्मिक शून्यता की शिकार पश्चिमी दुनिया भी इसे पचा नहीं पा रही है, परेशान है और खदेड़ रही है। एक जमाने में हम विवेकानन्द को भेजते थे, आज रजनीश को भेज रहे हैं। सबसे बड़ी बात यह कि समाज के हर पहलू को इसने आज कलुसित कर डाला है। गाँव, शहर, खदान, कारखानों में स्कुल, पुस्तकालय और पंचायत भवन टूट रहे हैं, और मंदिर-मस्जिद बन रहे हैं। हर जगह यज्ञ शुरू हो गया है। अचानक पता चला कि ईश्वर के कान कमजोर हो गये हैं, इसलिए मर्त्य लोगों की आवाज सुनाने के लिए माईक लग रहा है। माईक लगाकर मंत्रपाठ किया जा रहा है, अजान भी माईक के जरिये दिया जा रहा है। जो मजदूर बगैर गाड़ी के मीटिंग में नहीं आते हैं और दो कदम जुलूस करने में हिचकते हैं वे 'बोल बम' में ८५ मील चलकर वैद्यनाथ धाम में जल चढ़ाने जाते हैं। और इनकी तादाद बढ़ती जा रही है। जात पात, तिलक-दहेज, ताबीज-कवच अब नये रूपों में उभर रहे हैं। ज्योतिर्विज्ञान पर ज्योतिषी हावी हो रहे हैं, राजनीतिज्ञों और व्यापारियों की मदद से उनका प्रसार बढ़ गया है। ८० प्रतिशत से अधिक सांसद और ९५ प्रतिशत से अधिक विधायक शरीर पर किसी न किसी प्रकार का पत्थर चढ़ाये हुए हैं। गोमेद और रुद्राक्ष की बिक्री बढ़ गयी है। सभी "वादों" के ऊपर है आज भाग्यवाद। और सबसे अधिक खतरे का कारण यह कि यह नया अंधविश्वासवाद गाँव के अशिक्षित पुराने परंपरावादी लोगों को नहीं, बल्कि शहर के सुशिक्षित भद्र लोगों को आकर्षित किया हुआ है। अध्यात्मवाद और रहस्यवाद के इस नये उभार ने तमाम अच्छी संस्कृति के वर्तमान पर ही नहीं, बल्कि भविष्य पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

(३)

इस पृष्ठभूमि में भारत में एक सांस्कृतिक क्रांति आर्थिक और राजनैतिक क्रांति के अंग के रूप में शुरू से ही जरूरी है जो तमाम नये-पुराने अंधविश्वासों पर निर्मम आघात करके देश की मानसिकता को एक नई दिशा देगी। वह पहले एक आलोड़न होगा, जो एक आंदलन को जन्म देगा। प्रस्तुत पुस्तक का महत्व इसी आंदोलन के लिए एक चिनगारी के रूप में है। इसमें जो लेख हैं वे "उत्समानुष" नामक एक प्रगतिशील बंगाली पत्रिका में प्रकाशित लेखों के हिन्दी अनुवाद हैं। बंगाली में "उत्समानुष" पत्रिका एक सांस्कृतिक क्रांति के वाहन के रूप में कुछ दिनों के अन्दर ही अपने को प्रतिष्ठित कर पाया है और उसमें से जिन रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया गया है, उनका समाज में दूरगामी असर पड़ सकता है।

इस किताब में प्रकाशित लेखों को ३ भागों में बाँटा जा सकता है। कुछ लेख शिक्षा मूलक हैं। बहुत सी चीजें हमलोग आम जिन्दगी में देखते हैं, लेकिन हम उनके कारण नहीं जानते हैं। जैसे हिस्टीरिया एक मानसिक रोग है लेकिन लोग सोचते हैं कि भूत पकड़ा है। जब किसी पेड़ में फल नहीं फलता तो हम सोचते हैं कि वह पुरुष पेड़ है। पड़ को छेदकर खींच देने से पेड़ फलवती हो सकती है। इसमें कोई चमत्कार नहीं है, बल्कि कील गाड़ने से हार्मोनों का संचार बदल जाता है और पेड़ के अन्दर हार्मोनों का संचार होने पर फल का होना निर्भर है। दक्षिण चीन में खराब हवा की कहानी और कुछ नहीं मलेरिया था जैसे इस देश में "माँ शीतला" की पूजा करके लोग चेचक से मुक्ति पाना चाहते हैं। रात की पुकार—याने कुछ लोग नींद में दरबाजा खोलकर निकल पड़ते हैं, वह और कुछ नहीं 'सोम्नाम्बुलिज्म' नामक एक मानसिक रोग है। इसी तरह अहल्या उद्धार और दुर्गा पूजा की लोकायत व्याख्या इस संबंध में बहुत सी अज्ञानता को दूर करेगी।

दूसरी प्रकार की रचनाएं हैं, जिनमें उन बातों का भंडाफोड़ किया गया है, जहाँ कुछ धोखेबाज लोग लोगों के अज्ञान का फायदा उठा कर समाज को ठगते हैं और उस अज्ञान को बरकरार रखने में ही उनका निहित स्वार्थ है। जादू की जड़ को जमाने के लिए रहस्यवाद की जड़ को मजबूत करना जरूरी होता है और यह अगर कुछ चालाक लोगों की कमाई का स्रोत बन जाये तो उसके उन्मूलन के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। जैसे दाँत के कीड़े वगैर अणुवीक्षण यंत्र (माइक्रोस्कोप) के देखे नहीं जा सकते, लेकिन कुछ लोग दाँत का कीड़ा निकालने का धंधा फैलाये हुए हैं। "कुम्हड़ा का बीज बना दाँत का कीड़ा" और "दाँत का कीड़ा मंत्र सुनता है" —ये दोनों लेख प्रचलित अंधविश्वास को तोड़कर 'दंतक्षय' के रोग की ओर वैज्ञानिक आधार पर लोगों की नजर खींचते हैं, जो रोग प्रागैतिहासिक मानव में भी पाया जाता था। 'जांडिस' याने पीलिया की बीमारी लाल हेमोग्लोबिन रक्त कणों के बिलिरुबिन में बदल जाने से होती है, उसे वामनहाटि की डाली काटकर किस तरह चालाकी से माला बनाकर, उस माला से इलाज के नाम पर लोगों को ठगा जाता है और अंधविश्वास को फैलाया जाता है इसके रहस्य का भी उदघाटन किया गया है यहाँ। इसी तरह झाड़-फूंक, ताबीज-कवच; अंगूठी-माल तथा विभिन्न साधु-ओझाओं की करामात किस तरह रोग के कारण पर वैज्ञानिक चिंतन को धूमिल किया जाता है उसका एक आभास यहाँ मिलता है।

लेकिन यह सब समाज के लिए तब सबसे नुकसानदेह साबित होता है जब यह जादू और रहस्यवाद धर्म को आधार बनाकर चलता है क्योंकि वह लाखों करोड़ों लोगों की मानसिकता को कुंठित कर डालता है। इस किताब का कुछ अंश इन धर्म के ठेकेदारों पर निर्मम प्रहार करता है। महाकाल की जटा, मंदिर में धोखाधड़ी, शालिग्राम शिला का वैज्ञानिक रहस्य, रोती हुई प्रतिमा इसके उदाहरण हैं। जमीन के अन्दर चना फुलाकर शिव लिंग को मिट्टी फोड़कर निकलवा देना या गरम हवा के दबाव से मंदिर के दरवाजे को खोलकर भक्तों को आश्चर्यचकित करके पैसा इकट्ठा करना, खुद विज्ञान को जादू के रूप में इस्तेमाल करने के उदाहरण हैं। धर्म को आधार बनाकर खुद विज्ञान को ही जादू में बदल देना किसी समाज के वैज्ञानिक विकास में सबसे बड़ी बाधा है। मध्य युग में इसी तरह अलकेमी (alchemy) का प्रचार अरब देशों में था जो अन्य धातुओं को सोना में बदल देने की ठगी में रसायन शास्त्र का इस्तेमाल करता था। प्राचीन यूनान में 'अराकल' या जहाँ मूर्ति के पीछे पुरोहित छिपकर भविष्यवाणी का एलान करते थे और ऐसी ही एक गोलमोल भविष्यवाणी के चलते थपाटो के साथ लड़ाई में एथेस पराजित हुआ। सूर्य और चन्द्रग्रहण के बारे में भी पहले बहुत से अंधविश्वास चालू थे।

इतना ही नहीं, सिर्फ अज्ञान के कारण ही अंधविश्वास नहीं था। शासक वर्ग अपने स्वार्थ के लिए भी नाना प्रकार के हथकंडों को अपनाकर अंधविश्वास और रहस्यवाद को बरकरार रखता था। इस किताब में "कौटिल्य के अर्थशास्त्र" को उधृत करके लेखक ने जो बात बतायी वह इस रचना का सबसे मूल्यवान पक्ष है, देश में ज्ञान-विज्ञान की रोशनी फैले इसके लिए जैसे कुछ समाज सेवी सचेष्ट हैं उसी तरह ज्ञान-विज्ञान की रोशनी को फैलने से रोकने के लिए भी एक वर्ग काम करता है। क्योंकि ज्ञान ही शक्ति है। लोग यदि सही ज्ञान पायें तो आम लोग शक्तिशाली बन जायेंगे। और शक्तिशाली जनता किसी शोषण व्यवस्था पर आधारित शासक वर्ग के लिए हमेशा ही खतरनाक साबित हो सकती है।

(४)

दुनिया में कहीं अगर धर्म ने अफीम का काम किया है तो वह भारत में ही सबसे अधिक किया है। जात पात, सम्प्रदायों में बंटे हुए इस समाज पर सदियों से जिस तरह देव-देवी, भूत-प्रेत और ईश्वर के विभिन्न अनुचर डर, भक्ति और चमत्कारों के द्वारा अपने राज को कायम रखे हुए हैं और उसने ऐसी एक मानसिकता को जन्म दिया है

कि उसमें कोई बुनियादी बदलाव नहीं लाने से कोई भी क्रांति असंभव है। किसी भी स्वस्थ राजनीति के लिए एक स्वस्थ संस्कृति का होना जरूरी है। एक स्वस्थ संस्कृति एक मुक्त चिंतन तथा युक्तिवाद के आधार पर ही बन सकती है। भारत के लिए यह एक बहुत बड़ी बगावत होगी क्योंकि यहाँ शासक वर्ग के प्रोत्साहन से धर्म और अंधविचारों की पकड़ बढ़ रही है और सिर्फ हिंदू संस्कृति ही नहीं, इस्लाम, इसाई, सिख हरेक मजहब एक ही प्रकार चमत्कारों और अंधविश्वासों पर आधारित हैं। जात पात को मानते हैं, भूत प्रेत से डरते हैं, माला-ताबीज को मानते हैं, और सबसे बढ़कर यह कि ज्ञान से डरते हैं। इसलिए भारत में सांस्कृतिक क्रांति को बहुत महत्व देकर चलाना होगा। यह सिर्फ विचारों पर चोट करने से नहीं बल्कि विश्वासों पर चोट करने से होगा। यह छोटी सी किताब इस दिशा की शुरूआत करेगी — इसी उम्मीद के साथ जिज्ञासु पाठकों के सामने इस पुस्तक को हम पेश करते हैं।

ए० के० राय

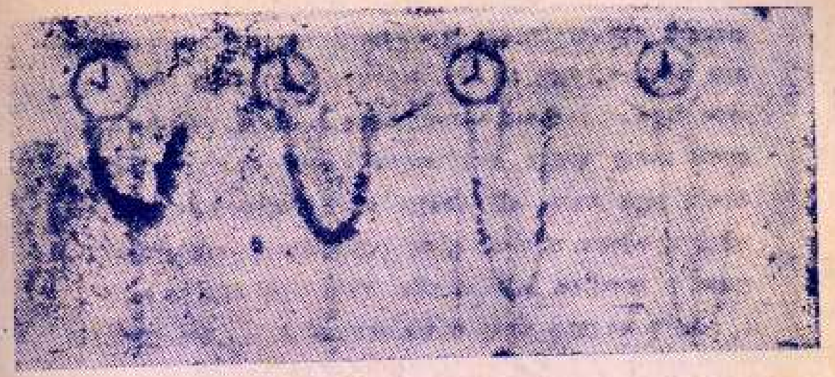

माला बढ़ती है तो रोग दूर होता है [पृष्ठ संख्या ३३]

मत्स्य कन्या का रहस्य [पृष्ठ संख्या ३०]

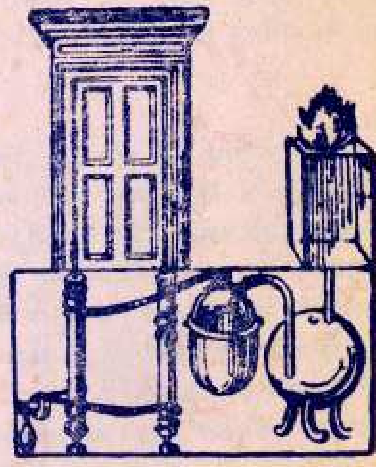

मन्दिर में धोखाधड़ी [पृष्ठ संख्या ६]

लेखों से सम्बन्धित तस्वीर

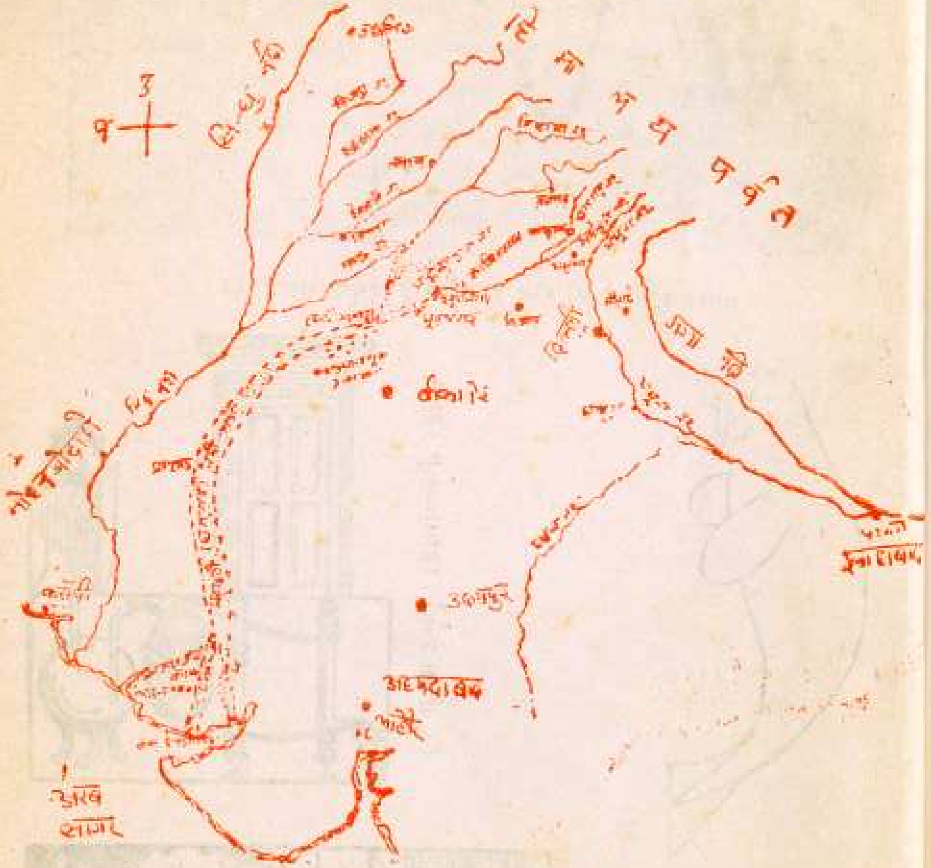

प्रयाग की रहस्यमयी सरस्वती [पृष्ठ सं० १६]

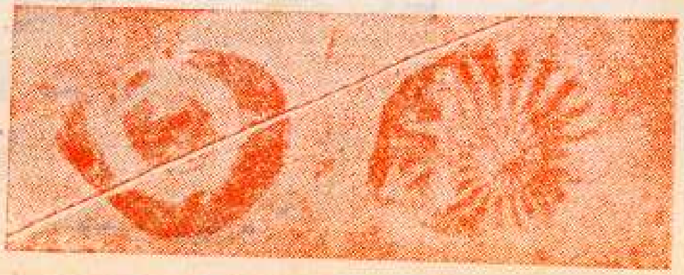

शालिग्राम शिला का विज्ञान रहस्य [पृष्ठ सं० ७]

रोती हुई प्रतिमा

संकलनकर्ता

पुराने लोगों से सुनी हुई चालीस-पचास साल पहले की कहानी है। खास बनारस में एक दिन अचानक शिवजी मिट्टी फोड़ कर जमीन से प्रकट हुए।

इस पुण्यधाम बनारस में बड़ी - बड़ी अलौकिक और दैवी घटनायें घटती रहती हैं। लेकिन इस घटना का तो कोई जवाब ही नहीं है। दावानल की तरह इसकी खबर फैल गयी थी। प्रभु की महिमा के इस चमत्कार से दुःखी और पीड़ित लोगों के दिलो में आशा की एक ज्योति जगी— अब दुखों का अंत हो गया कलिकाल कट गया। अब न कोई बहस करना है, न अविश्वास, बस अब फूल चढ़ाना होगा, पत्ता चढ़ाना होगा, बाबा के मस्तक पर जल चढ़ाना होगा और हां, दक्षिणा भी देना है। बस, सब मुशकिल आसान हो जायेगा।

थोड़ा-थोड़ा करके शिवलिंग अपने आप मिट्टी फोड़ कर ऊपर उठने लगा। बनारस के आश्चर्य चकित मूर्ख भक्त लोग भावाभिभूत होकर फटी आंखों बाबा के आविर्भाव को देखते रहे। न कोई भूल नहीं, कोई दृष्टिभ्रम नहीं, बिल्कुल चकाचौंध सूरज की रोशनी में फटी धरती के अन्दर से शिवलिंग का मस्तक उभरता आ रहा है। लेकिन इस अजब घटना का अंत उससे भी अधिक चौंकाने वाला था। पता नहीं कैसे इस रोमांच कारी घटना का भंडा फोड़ हो गया। उभर कर ऊपर उठे हुए शिवलिंग के ठीक नीचे ही मिट्टी में चना भरा हुआ एक बोरा पाया गया। पहले से ही मिट्टी खोदकर बोरे को नीचे रखा गया था और उसके ऊपर शिवलिंग को बैठाया गया था। इसके बाद स्वभावत: सूखा हुआ चना भींगी हुई मिट्टी से पानी सोखकर फूलने लगा।

एक बोरा चना अंकुर निकलने के दबाव से फूलता गया और दबाव बढ़ता गया। गड़े में चारो तरफ चना के फैलने के लिए जगह नहीं थी, और ऊपर रखा था खुद शिवलिंग। इसलिए चना केवल ऊपर की ही तरफ फूल कर उठ सकता था। बोरा भर चने के सम्मिलित दबाव को वह काले रंग का बेसाल्ट पत्थर का टुकड़ा रोक नहीं सकता था। इसीलिए शंकर भगवान थोड़ा-थोड़ा करके सिर ऊपर उठाने लगे और दर्शकों का आश्चर्य भी बढ़ता गया। (और पंडों का जोश छलांगें मार रहा था !) यह नया कौशल अंत तक सफल नहीं हो पाया। उभरकर ऊपर आते हुए शिवजी के नीचे से अंकुरित चने का बोरा बाहर निकल आया।

उतनी दूर जाने की जरूरत नहीं है। खास कलकत्ते में ही १९२०-३० के वर्षों में (सम्भवत: १९२८ ई० में) बिलकुल इसी प्रकार धरती फोड़ कर फूट पड़ी थी — शिव नहीं, काली मां। कहते हैं कि किसी को स्वप्न में बताया गया था कि गंगा किनारे ईडेन गार्डेन में मां काली एक हजार वर्षों से कैद पड़ी हैं, उनकी कैद की मीयाद पूरी हो गयी है और अब वह धरती फोड़ कर ऊपर उठ रही हैं। बाकायदा भीड़ जमा हो गयी। दर्शकों के असीम आश्चर्य और भाव विह्वलता के बीच देवी प्रकट हुई। उसके बाद वह प्रतिमा बड़े धूम-धाम से दक्षिणेश्वर के पास आद्यापीठ-मन्दिर में प्रतिष्ठित की गयी। इस बीच चने के बोरे के रहस्य का भंडाफोड़ हुआ — कुछ लोग हिम्मत करके आगे आये। संदेह, बहस और आरोप का सिलसिला चला। इस नाटक के कर्णधार लोग शुरु में कुछ आंय-बांय करने के बाद थोड़ी दबी आवाज में बोलने लगे— क्या कई हजार साल पुरानी काली की प्रतिमा को उस प्रकार पिछली रात मिट्टी में दबा कर रखना संभव है ? यह पागलों के बकझक के सिवा और क्या है ? विश्वविख्यात इतिहासकार और तांत्रिक श्री राखाल दास बंद्योपाध्याय को बुलाया गया। उन्होंने आद्यापीठ मन्दिर में प्रतिष्ठित काली की प्रतिमा को देखा, जांचा और स्पष्ट शब्दों में अपनी राय दी कि यह प्रतिमा बिलकुल नयी है और हाल में बनायी गयी है। इसे कई हजार वर्ष पुराना कहना निपट मूर्खता या पागलपन है।

चारो तरफ भंडाफोड़ की खबर फैल गयी। बेवकुफ बनने की शर्म से पीड़ित हो उठे कई लोग। इज्जत बचाने के लिए उस काली प्रतिमा को गंगा में विसर्जित कर देना पड़ा। इस घटना के बाद काफी साल तक आद्यापीठ का मन्दिर बिना प्रतिमा के सूना पड़ा रहा। इस वक्त उस मन्दिर में देवी की जो प्रतिमा है वह मात्र २० वर्ष पुरानी है।

विशाल भारतवर्ष में आज इधर, कल उधर ऐसी घटनायें घटती ही रहती हैं। कोई नहाने जाकर भगवान की मूर्ति पा जाते हैं, तो कोई स्वप्न में बतायी हुई जगह में खोदकर प्रतिमा का आविर्भाव करते हैं। पहले से पानी में या जमीन के नीचे पत्थर को दबा कर रख आते हैं और बाद में सपने की बात का प्रचार किया जाता है ताकि घटना को अलौकिक रूप दिया जा सके। इस सीधी सी सचाई की संभावना का ख्याल हम लोगों के सरल और कमजोर दिलों में सहजता से नहीं आता। क्यों नहीं आता है, सो एक अलग समस्या है। लेकिन यह मात्र आज की समस्या नहीं है।

इन्सान के दुख, कमजोरी, असहायता के फलस्वरुप जो भगवान का डर और भगवान पर भरोसा आदमी के मन में घर करता है उसका फायदा उठाते हुए, केवल इस घोर कलियुग में ही नहीं, अतीत के तथा कथित स्वर्णयुग में भी लोगों को इस तरह ठगने का धंधा जोरों पर था। बल्कि ऐसी ठगी को सीधे राज समर्थन प्राप्त रहता था। राजा खुद इस धंधे से प्राप्त आमदनी के बड़े भोग को हड़प लिया करता था। अवश्य ही आम

जनता से ये बातें छिपा कर रखी जाती थीं। कम से कम २२०० साल पहले भी ऐसी घृणित धोखाधड़ी के माध्यम से जनता को लूटे जाने का उल्लेख चाणक्य द्वारा रचित वर्णाश्रम धर्म संरक्षण नीति और उपदेश ग्रंथ "अर्थशास्त्र" के पंचम खंड के दूसरे अध्याय में मिलता है।

"किसी प्रसिद्ध तीर्थस्थल में धरती को फाड़ कर देवता प्रकट हुआ है इस धोखे से वहां रात में या सुनसान में एक देवता की प्रतिमा की स्थापना करके और इस उपलक्ष्य में इस स्थल पर उत्सव और मेलों का आयोजन करके श्रद्धालु भक्तों द्वारा भेंट चढ़ाये गए धन का देवताध्यक्ष गुप्त रुप से राजा को भेंट करें।" (कौटिल्य अर्थशास्त्र—५वां अधिकरण २रा अध्याय ९०वाँ प्रकरण)। सेनापति की तरह देवताध्यक्ष।

कृषि विभाग और सेना विभाग की तरह देवता विभाग होगा याने मठ-मंदिर प्रतिमा आदि से सम्बन्धित विभाग। उसी विभाग का प्रधान देवताध्यक्ष कहा जायेगा। इनकी जिम्मेवारी है : "देवताध्यक्ष किला और राज्य के देवतागण के धन को बाकायदा एक जगह जमा करेंगे और उसी प्रकार उस धन को राजा के पास जमा कर देंगे।" (कौ० अ०—५-२-९०)। इसी से समझा जा सकता है कि उस जमाने में धर्म का धंधा कोई इक्का-दुक्का पागलपन जैसी घटना नहीं होती थी—बाकायदा कुर्सी-टेबुल-चपरासी आदि से सुसज्जित दफ्तर के संचालन में एक सुनियोजित और सुसंगठित षडयंत्रकारी प्रक्रिया हुआ करती थी। लोगों को ठगने के तोर-तरीके भी बड़े अजीबोगरीब होते थे। आम आदमी की मानसिकता के अच्छे जानकार विशेषज्ञों की बुद्धि की ऊपज थे ये सारे कौशल।

"देवताध्यक्ष ऐसा भी प्रचार कर सकते हैं कि बगीचे में एक खास पेड़ में बेमौसम फुल और फल लगे हुए हैं और इसी के चलते वहां देवता का आगमन निश्चित हुआ है।" (कौ० अ०—५-२-९०)। इसलिए भक्तगणों, अपनी भलाई के लिए पैसा फेंको : "सिद्ध पुरुष के वेष में गुप्तचर लोग (श्मशान के पास) किसी पेड़ पर मौजूद राक्षस द्वारा हर दिन करके हिसाब से एक-एक आदमी खाने के लिए मांगे जाने की बात कहकर लोगों में राक्षस का डर पैदा करेंगे और नागरिकों और ग्रामीणों से काफी रुपया लेकर डर को मिटायेंगे, याने राक्षस के भय से जान बचाने के लिए दी गयी राशि को छुपा कर राजा को सौंपा जायेगा।" (वही)। कमाल है ! अंधेरे में छुपकर बैठो ओर दो-तीन बेगुनाह लोगों को गायब कर दो। उसके बाद आश्चर्य और भय के शिकार जनता के पास लाल कपड़ों और जटाजूट वाले बाबा का भेष बना कर कहो, राक्षस आया है। उसे न मारने से वह रोज मनुष्यों को मार कर खायेगा।" इसलिए रुपया दो। राक्षस को मारने के लिए कितना सारा खर्च है, यज्ञ, पुजा-पाठ करना होगा।

"किसी सुरंग वाले कुएं में ३ या ५ सिरों वाले नाग की मूर्ति को लोगों को दिखा कर उनसे सोना या रुपये भेंट के रुप में लो और उसे राजा के पास जम करो।" (वही)। तीन या पांच सिरों वाला साँप !! यह कोई मामूली चीज नहीं है बच्चे, खुद वासुकी की लड़की के घर का नाती है। इसलिए निकालो कुछ। साधारण कुएं के अन्दर खोदे गये सुरंग में छिपकर उस आधे अंधेरे और आधे उजाले के रहस्यमयी वातावरण में पांच सिरों वाले साँप की मूर्ति को दिखा कर सरल बुद्धि वाले श्रद्धालु लोगों के दिलों में उसके असली जिन्दा सांप होने का विश्वास भर देना वैसा कोई कठिन काम नहीं है। पैसा वसूलने के ऐसे दांव को छोड़े क्यों ?

सचमुच छोड़ा नहीं जा सकता है और इसी कारण दो हजार वर्ष बाद में भी इसी प्रकार की चतुराई से कई मंदिरों में पैसा कमाया जाता है कलकत्ते में, पश्चिम बंगाल में भारत वर्ष में......।

लेकिन यही सब कुछ नहीं है। इस धोखाधड़ी का पर्दाफाश करने वाली एक समानांतर धारा भी चली है। जैसा हमने धरती फोड़ शिव और काली के मामले में देखा है।

आज की तरह उस जमाने में भी ऐसे कुछ लोग थे जो ठगों की ऐसी करतूतों को सीधे मान नहीं लेते थे; सवाल खड़ा करते, शंका करते और हर मामले में छान-बीन करते। मुट्ठी भर स्वार्थी लोग जो जालसाजी द्वारा गोरा को काला बनाकर दिखाते; उससे आम लोगों को तात्कालिक रूप से आर्थिक नुकसान तो होता ही था, बल्कि साथ ही उनके मन में दुनिया की गतिविधियों के बारे में एक गलत, अवास्तविक और काल्पनिक समझ बैठ जाती थी। आदमी मोहग्रस्त, डरपोक और भाग्यवादी बन जाता था। शोषण और शासन को बरकरार रखने के लिए इसी की तो जरूरत है। पुराने जमाने के भौतिक वादी लोग इस मानसिक लूट और नुकसान को मान जाने के लिए बिलकुल तैयार न थे। उस वक्त की राज्य व्यवस्था धंधे को नुकसान पहूंचाने वाले इन अविश्वासी लोगों को "शिक्षा" के नाम पर कठिन सजा की व्यवस्था करती थी। चाणक्य ने इस तरह के लोगों के लिए नियम बनाया था : "जो लोग अविश्वासी हैं उनको भोजन और स्नान आदि की सामग्रियों में अल्प मात्रा में जहर मिलाकर नशा की स्थिति पैदा करके, "उसे देवता का श्राप" कह कर प्रचार करना चाहिए।" याने हमलोगों के पीछे मत लगो उसका नतीजा अच्छा नहीं होगा। इस भयानक सबक को हर तबके के लोगों के दिलों में गहरा बैठा देना होगा। यही था चाणक्य का उद्देश्य।

पहले की बात को अगर छोड़ भी दिया जाये तो पिछले सवा दो हजार वर्षों से कौटिल्य के बताये रास्ते पर इन्सान को धोखा देने के कलंकमय इतिहास के साथ-साथ इसके विरोध की गौरवमय परंपरा भी रही है। इसीलिए विसर्जन के दिन मिट्टी की प्रतिमा की आंखों के नम होने की घटना जिस तरह आज भी घटती है उसी प्रकार असंख्य भक्त लोगों की भीड़ के बीच वैसे भी आदमी मिलते हैं जिन्हें रोती हुई प्रतिमा के पीछे छुपे रहस्य को पता लगाने तक चैन नहीं मिलता।

देवी के रोने का यह मामला कोई पुराना मामला बिलकुल नहीं है, बल्कि एक दम हाल का मामला है। दक्षिण कलकत्ता के हरीश मुखर्जी रोड के २३ - पल्ली की दुर्गा पूजा में दुर्गा के इस रोने के चलते प्रतिमा विसर्जन रुक जाने की घटना किसी भी कलकत्ता वासी को याद होगा। मां की आंखों में आंसू सूखते नहीं हैं, सो प्रतिमा विसर्जन भी रूका पड़ा है। लेकिन इस तरह कोई ज्यादे दिन नहीं गुजरे। कुछ दिन बाद ही जब देखा गया कि पूरा मामला जमीन दखल की एक साजिश के साथा जुड़े होने की खबर अखबारों में आने लगी, तब फटाफट बाजा गाजा के साथ रोती हुई प्रतिमा का विसर्जन कर दिया गया।

इसके साथ ही २३पल्ली से थोड़ा उत्तर की ओर रूपनारायण नंदन गली और शंभूनाथ पंडित रोड की मोड़ पर शीतला मंदिर में रोती हुई प्रतिमा की घटना। १९६८-६९ ई० की बात बता रहा हूं। रो रो कर मां शीतला की आंखें लाल हो गयी हैं, जिसे देखने के लिए पूरा मजमा जुट गया था; और दक्षिणा में दिये गये नोट और सिक्के भरी थाली से ढूलक रहे थे। इस नाटक पर भी पर्दा गिरने में अधिक वक्त नहीं लगा। खुसुर-फुसुर बातें शुरु हुई, छानबीन हुआ। कोई कहता प्रतिमा की आंखों में तेल डाला गया, कोई कहे ग्लिसरीन, कोई कहे कि प्रतिमा के पीछे से नल घुसा कर बून्द-बून्द पानी निकाला जा रहा है। अखबारों में इसकी खबर छपने से हंगामा खड़ा हो गया। धंधे से आमदनी बंद हो गयी।

इन सब घटनाओं की पृष्ठभूमि में आने वाले कल के जागृत इन्सान का रूप उभर कर आता है जो हर जगह इस घृणित जालसाजी का पर्दाफाश कर देगा।

—✻✻—

सहायक ग्रंथ : कौटिल्य का अर्थशास्त्र। डा० राधा गोविन्द बसक द्वारा बंगाली में अनुवाद २रा खण्ड। १९२६ सन् का संस्करण।

—✻✻—

मंदिर में धोखाधड़ी

अनुवाद : श्यामल भद्र

प्राचीन मिश्र का कोई धार्मिक स्थल ।

मंदिर के मनमोहक वातावरण को बरकरार रखने के लिए तमाम व्यवस्था की गयी है । देवता के प्रधान कक्ष का दरवाजा बंद है । उसके समक्ष पूजा की बेदी है, जिसपर आराधना के वक्त होम कुंड में आग जलती है । निर्धारित समय पर पुरोहित आता है । आनुषंगिक विधि-विधान पूरा करने के बाद यज्ञ मण्डप पर आग जलायी गयी, मंत्रोच्चारण के साथ उस आग में धूप डाला गया । पवित्र धूप के अपूर्व सुगंध से कमरा भर गया और पूजारी द्वारा मंत्रोच्चारण के साथ-साथ देवता के कक्ष का दरवाजा अपने आप धीरे - धीरे खुल गया और वहाँ शामिल लोगों की आँखें इस आश्चर्यकर घटना से खुली रह गयीं । प्राचीन ग्रीस (यूनान)के गणितज्ञ और यंत्रविद् अलेग्जेंड्रिया के हेरो के चमत्कारपूर्ण यांत्रिक आविष्कार के अध्ययन से मिश्र के पुरोहितों की इस अद्भुत अलौकिक शक्ति के असली रहस्य का पता चलता है ।

यहाँ दिये गये दो चित्रों द्वारा उपरोक्त तरकीब को अच्छी तरह से समझाया गया है । मंदिर के बंद दरवाजे के सामने धातु का बना एक खोखला यज्ञ मंडप रहता था और बाकी सारा इंतजाम कुशलता पूर्वक पथरीले फर्शके नीचे छिपाकर रखा जाता था। यज्ञ मंडप पर होमकुन्ड में आग और धूप जलाने से मंडप के अन्दर की हवा गरम हो जाती है और फैल जाती है, जिससे उसका दबाव बढ़ जाता है । फैली हुई गर्म हवा का दबाव नीचे रखे बर्तन के पानी पर पड़ता है । इस दबाव से कुछ पानीएक नल द्वारा बगल में रखी बालटी में चला आता है । धीरे-धीरे बालटी भारी होकर नीचे उतरती जाती है । बालटी बालटी के नीचे जाने से बालटी से लगी रस्सी की टान से दरवाजों के कबंधों के नीचे लगा खुंटा घुम जाता है, जिससे धीरे-धीरे दरवाजा खुल जाता है ।

अन्दर की तमाम घटना भोले-भाले भक्तों की नजर से छिपाकर घटायी जाती है । वे लोग केवल सुगंधित धूप का धूआँ और मंत्रपाठ के साथ-साथ खुलते हुए दरवाजे को देख पाते हैं स्वभावतः इस चमत्कार को देखने के बाद पुरोहित की अलौकिक शक्ति के सामने वे लोग अपने को सौंप देते ।

स्रोत : Physics for Entertainment, Ya Perelman,
Vol. 1, Mir Publishers, Moscow 1975

शालिग्राम-शिला का विज्ञान रहस्य

आज की दुनिया में मानव समाज की बहुत-सी प्राचीन बातें, विश्वास, मान्यताएं और पूजा-उपासनाएं विवाद का विषय बन गई हैं । पुरानी परम्पराओं के जन्न और कारणों की वैज्ञानिक छानबीन की कोशिशें की जा रही हैं । इन कोशिशों के पीछे एक सच्चाई है । वह सच्चाई यह है कि विज्ञान - रहित ज्ञान का, रहस्यमय विज्ञान का और मनुष्य की पहूंच के बाहर के रहस्य का कोई अस्तित्व नहीं है। यह सच्चाई कोई बिल्कुल नई चीज नहीं है, भारतीय दर्शन की परम्परा में भी यह मौजुद है । 'भागवत' में कहा गया है :—

ज्ञानम् मे परमम् गुह्य् यद्विज्ञान समन्वितम्
सरहस्यं तदंगम् च गृहाण गदीतं मया ।

उदाहरण के लिए हिन्दुओं की शिवलिंग पूजा को लिया जाए : यह शिव-और दुर्गा के संयुक्त यौनअंगों की पूजा है। जो यौनअंग और क्रिया सामाजिक रूपसे गोपनीयबात मानी जाती है, जिसे खुलकर करना अशोभनीय समझा जाता है, इसी की पूजा हर वर्ग के हजारों स्त्री-पुरूष खुलकर करते हैं । क्यों करते हैं ? हम नहीं जानते और न जानने की इच्छा है और ऐसा भी कहते हैं कि इसे जानने की कोशिश भी नहीं करनी चाहिए । लेकिन जरा खुले दिमाग से गौर करें तो यह साफ हो जाता है कि स्त्री-पुरूष के यौन अंगों के मिलन से स्त्री के गर्भ में जीवन का जो उद्भव होता है, भ्रूण और शिशु का विकास होता है—प्रकृति का यह जादू बहुत प्राचीन काल से दुनिया को आश्चर्य चकित करता आ रहा है । और इस प्रक्रिति के रहस्य के मूल में जो लिंग है उसकी पूजा करने का चलन मोहग्रस्त मनुष्यों में चल पड़ा । इससे मिलती-जुलती बात खेती के मामले में भी देखी जा सकती है । अनार्यों की कृषि व्यवस्था का आर्यों पर काफी प्रभाव पड़ा था । जमीन पर हल चलाकर बीज डालने से फसल पैदा होती है— प्रकृति की इस लीला ने भी प्राचीनकाल के मनुष्यों को चकित किया था । इसी लीला के भय और श्रद्धा से उस यौन क्रिया के प्रतीकों की पूजा का चलन हुआ ।

लेकिन शिव-दुर्गा के यौनांगों की पूजा का वैज्ञानिक विश्लेषण करना प्राचीन काल में सम्भव न था । पुराने आर्य लोगों के बीच मूर्तिपूजा या प्रतीक-पूजा के प्रमाण नहीं मिलते हैं । बाद में पुरोहितों ने इसे अपना लिया और संस्कृत भाषा में इसपर सुन्दर कहानियाँ लिख दीं । इसलिए अब भूलकर भी कोई यह नहीं सोचता है कि ये पूजा अशोभनीय या अपवित्र है । शिव-पुराण, स्कन्ध-पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण में चमत्कारपूर्ण और रहस्यपूर्ण कहानियों के जरिए इस पूजा की महिमा का वर्णन किया गया ।

ऐसा ही शालिग्राम-शिला या नारायण - शिला की पूजा के मामले में भी किया गया। यह विष्णु या नारायण के प्रतीक की पूजा है। हिन्दुओं की किसी भी पूजा या धार्मिक अनुष्ठान में इस शिला की पूजा जरूरी मानी जाती है। एक गोलाकार पत्थर के नारायण और उनके शरीर पर लिपटी तुलसी यानी लक्ष्मी, महज एक पत्थर और उससे लिपटे एक पत्ते की पूजा को प्रतिष्ठित करने के लिए इसके जन्म के बारे में पण्डे-पुरोहितों ने सैकड़ों कहानियाँ-किस्से गढ़े।

पुराने जमाने में अनार्यों के बहुत से आचार विचार आर्यों की संस्कृति के साथ घुल-मिल कर उनके समाज में कायम हो गए। भारत में जो आर्य आए थे उनकी धार्मिक पूजा में मूर्तियों का कोई स्थान न था। नारायण की पूजा बेशक एक अनार्य पूजाथी। वैदिक साहित्य में नारायण का नाम कहीं नहीं मिलता। आर्य राजा लोग जब अनार्यों के इलाकों पर हमले करके उनपर विजय प्राप्त करते थे तो उनकी सुन्दरियों को भी उठाकर अपने महलों में ले आते थे। वे उनसे विवाह भी करते थे। विवाह करनेवाली अनार्य स्त्री अपने अनार्य समाज के बहुत से आचार-विचार और पूजाएं नये परिवार में लेकर आती थी। इस तरह आर्य समाज में अनार्य समाज की संस्कृति का प्रवेश होता था। अनार्यों की जो पूजाएं आर्यों को अशोभनीय लगती थीं, पण्डे-पुरोहित से उन्हें शोभनीय बनाने के लिए कहा जाता हमेशा से राजाओं की सेवा करनेवाले पण्डे-पुरोहित पुराण और कथाएं गढ़कर उन अशोभनीय पूजाओं को नया रूप देकर राजाओं की पसंद के मुताबिक ढालते थे। इस तरह शिव-दुगा के मिलन की कहानी और नारायण-तुलसी के प्रेम की कहानी शुरु हुई। नीचे हम शालिग्राम-शिला या नारायण - शिला की असलियत और पुराणों के साथ उसकी संगति की जाँच करेंगे।

शास्त्रों और पुराणों में कहा गया है कि शालिग्राम या नारायण-शिला की पूजा करने का गैर ब्राह्मण को, औरत को और यहाँ तक कि ब्राह्मण की कन्या को भी हक नहीं है। धातु, लकड़ी या मिट्टी से यह शिला नहीं बनाई जा सकती, यह शिला अपने आप पैदा होनी चाहिए। उत्तर भारत की बर्फ से पिघली हुई नदी गण्डक या गण्डकी नेपाल के पहाड़ों से निकलकर आती है। पुराणों में इसका नाम 'सदानीरा' है, नेपाल में इसे ही 'शालिग्रामी' नदी कहते हैं। इसी नदी में शालिग्राम शिलाएं मिलती हैं। यह शिला आमतौर पर गोलाकार होती है, ऊपर और नीचे से कुछ चिपटी। कभी-कभी अंडाकार, त्रिभुजाकार या शंकुकार भी होती है। रंग अक्सर काला होता है, हालांकि लाली लिए हुए पीला या धूसर रंग भी मिलता है, लेकिन सिर्फ इतने से ही यह शिला पूजनीय नहीं बन जाती, कुछ और लक्षण भी जरूरी हैं। प्रत्येक नारायण शिला के बीच में एक गड्ढा होता है जिसे शास्त्र विष्णु या नारायण का नाभि-मूल बतलाते हैं। इसी नाभि - मूल से ब्रह्मा का

जन्म बतलाया जाता है। ऐसे तो यह शिला चिकनी होती है लेकिन नाभि - मूल के पास और अन्दर गोलचक्र के निशान मिलते हैं। कहा जाता है कि कुछ शिलाओं में सोने का आभूषण भी रहता है, हलांकि ऐसा बहुत कम मिलता है। जिसमें ऐसा आभूषण होता है, उस शिला की प्रतिष्ठा भी अधिक होती है।

भू-वैज्ञानिक इसके बारे में क्या कहते हैं? उनका कहना है कि नेपाल की सात गंडकी नदियां दक्षिण में मिलकर चलती हैं और पटना के पास पहुंचकर गंगा में मिल जाती हैं। सात गंडकियों में सबसे पुरब में त्रिशूली गंडकी है और सबसे पश्चिम में काली गंडकी है, इसी को शालिग्रामी गंडकी भी कहते हैं। शालिग्राम-शिला असल में इसी नदी में बहकर आती है।

काली गंडकी नदी हिमालय की दो चोटियों धौलगिरी और अन्नपूर्णा के बीच से निकलकर आती है। यह काली गंडकी नदी अपने साथ एमोनाइट नामक एक प्रागऐतिहासिक कालीन काले समुद्री जन्तु के फॉसिल (जीवाश्म) को बहाकर लाती है। यही शालिग्राम-शिला है। एमोनाइट घोंघे जैसा सख्त खोल वाला जन्तु था। करोड़ों वर्ष पहले ये जन्तु समुद्र में घूमते रहते थे। बाद में ये जन्तु धीरे-धीरे मर गए और उनका शरीर समुद्र के नीचे पत्थरों के रुप में बदल कर रह गया। जब समुद्र का तल भुकम्प से ऊपर उठ गया तो इस जन्तु के फासिल भी ऊपर आ गए जिन्हें नदियां अपने साथ बहाकर ले आती हैं। इस एमोनाइट के फासिल का रूप अद्भुत सुन्दर है। पहली ही नजर में मन मुग्ध हो जाता है मानो किसी कलाकार ने उन्हें संवारा हो। कमजोर धर्म-भीरू लोग चमत्कार पूर्ण चीजों से जल्दी ही प्रभावित हो उठते हैं और तुरन्त उनके दिल में देवी-देवताओं का ख्याल आ जाता है। एमोनाइट के सुन्दर रूप ने ही धर्म-भीरू लोगों की नजर में उसे देवता बना दिया।

एमोनाइट जन्तु साढ़े ६ करोड़ साल पहले ही संसार से मिट चुके हैं। भू-वैज्ञानिकों के मत से ये जन्तु 'सेफालोपोडा' श्रेणी में थे। १८ करोड़ साल पहले जुरासिककाल में समुद्र में इनकी संख्या बहुत बढ़ गई थी।

आज भी पृथ्वी के जुरासिक-कालीन स्तर में एमोनाइट के फासिल मिल सकते हैं। गंडकी के अलावा और भी बहुत सी देश-विदेशी नदियों में (जैसे नर्मदा नदी में) ये फॉसिल मिलते हैं हालांकि ये गंडकी के फॉसिलों जैसे काले रंग के नहीं हैं। शिला का रंग उस हालत में ही काला होता है जब ये फॉसिल एक खास भू-स्तर पर; जिसे 'स्फीटीसेल कहते हैं' तैयार होते हैं। काली गंडकी नदी नेपाल में इस स्फीटीसेल भू-स्तर से होकर बहती है, इसलिए उसमें काली शिलाएं मिलती हैं। एमोनाइट का

शरीर गोल स्प्रिंग की तरह चक्करदार होता है। इसलिए उसके केन्द्र में गड्ढा रहेगा ही। विष्णु या नारायण शिला के केन्द्र में भी नाभि मूल दिखाई पड़ता है जिसे गलती से लोग शिला का मुंह समझते हैं। क्योंकि एमोनाइट का फॉसिल अनेक दिनों तक पत्थरों के बीच दबा रहता है, इसलिए उसमें केन्द्र का गड्ढा ढंक जाता है। यही कारण है कि कई शालिग्राम शिलाओं में यह नाभिमूल साफ-साफ नहीं दिखता। सिर्फ उसका निशान भर रह जाता है। जैसे हर कीमती चीज की नकल बाजार में मिल जाती है, उसी तरह हिन्दुओं के इस उपास्य देवता की भी नकल बाजार में मिल जाती है। बहुत से पुजारियों के पास यही नकल की शिला मिलती है। इस पुस्तक का लेखक खुद दसियों बार असली शालिग्राम शिला की खोज करते हुए धोखा खा चुका है। प० बंगाल के बहुत से मन्दिरों में इसी नकली शालिग्राम देवता के दर्शन करके निराशा होती है। बहुत सी जगहों पर काले बेसाल्ट पत्थर के ढेले को नारायण शिला कहकर प्रतिष्ठित कर दिया गया है। बहुत बार इस पत्थर के बीच लोहे की छड़ से नाभिमूल भी तैयार कर लिया जाता है। अब रहा चक्र चिन्ह का प्रश्न। नारायण शिला का सतह काफी चिकनी होती है। चक्रचिन्ह जो भी दिखते हैं, वे सिर्फ नाभिमूल में दिखते हैं। लेकिन एमोनाइट के सारे शरीर पर ही चक्र चिन्ह होते हैं। ऐसा क्यों? असल में मन्दिरों में जो शिलाएं प्रतिष्ठित हैं, वे जमाने से काम में लाई जा रही हैं। हर रोज तेल और पानी से शिला को नहलाया जाता है, उसका बदन पोंछकर चन्दन लगाया जाताहै। इसलिए कई पीढियों के बाद एमोनाइट फॉसिल के शरीर के वे चक्रचिन्ह मिट जाते हैं, लेकिन केन्द्र के गड्ढे में दो-चार निशान बने रहते हैं क्योंकि वे गड्ढे में है।

अब जरा विष्णु के स्वर्ण-आभूषण वाली शिला पर गौर किया जाये। वह असल में स्वर्ण-चूर्ण नहीं है जैसा कि धार्मिक लोग समझते हैं। वह असल में 'पायराइट' नाम का एक खनिज पदार्थ है। 'पायराइट' एक यौगिक पदार्थ है जो कच्चे लोहे का सल्फाइड है। पानी और हवा के सम्पर्क में आकर यह पीतल के समान चमकदार हो जाता है। आम आदमी इसे सोना समझ बैठता है, इसलिये पायराइट को फूल्स गोल्ड (Fools Gold = मूर्खों का सोना) भी कहा जाता है। (इस सिलसिले में एक और विचार भी चलता है। पुराने यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि हिमालय की कुछ नदियों में बालू के साथ सोने के कण भी चले आते हैं। ये ही शिला के शरीर से लगकर या नाभि-मूल में जमा हो जाते हैं। शिला को देवता मान लेने का यह भी एक कारण हो सकता है।)

यहाँ तक शालिग्राम शिला और एमोनाइट फॉसिल के लक्षणों की समानता की बात हुई। प्राचीन काल में लोग दुर्लभ वस्तुओं के रूप के रहस्य को देव-कल्पना के साथ जोड़ देते थे; आज भी थोड़ा-बहुत ऐसा करते हैं। सिर्फ हिन्दू ही नहीं, गैर - हिन्दू भी ऐसा करते रहे हैं। एमोनाइट नाम मिश्र के देवता 'एमोन' से बना है। एमोन देवता के सिर के

मुकुट पर भेड़ के गोल सींग के रूप से मिलते - जुलते नदी में मिलने वाले फॉसिल को भी 'एमोन' देवता के साथ जोड़ दिया गया। प्राचीनकाल में शालिग्राम शिला की पूजा के चलन के पीछे कुछ इसी तरह के मनोविज्ञान ने काम किया होगा। हालांकि इसका कोई सीधा सबूत नहीं है। रहना सम्भव भी नहीं है क्योंकि यह धार्मिक विश्वास तो लोकमत के विकास के साथ-साथ आया है जिसके ऐतिहासिक प्रमाण या दस्तावेज नहीं मिलते। ऊपर की समानताओं के अलावा शालिग्राम की पूजा और शिला की आकृति के बीच सम्बन्ध होने के कुछ और कारण भी हैं। जरा प्राचीनकाल के हिन्दू पितृसत्तात्मक समाज के मनोविज्ञान पर नजर डालिये। नारी गर्भ में शिशु का जन्म और हल चलाकर बीज डालने से फसल के उत्पादन के रहस्य चमत्कार को शिव-दुर्गा की लिंग योनि प्रतीक की पूजा के रूप में प्रतिष्ठा मिली। लेकिन जैसे-जैसे समाज में पुरुष की सत्ता प्रधान होती गई मामला उलटता गया। अब यह धारणा पैदा हुई कि शिशु के जन्म में पुरुष के शुक्राणु की भूमिका ही प्रधान है। अर्थात् असल में पुरुष का अण्डकोष ही प्राणी के जन्म का मूल आधार है क्योंकि अण्डाकोष में ही जीवन का बीज जमा रहता है। लगता है इसी कारण पुरुष के अण्डकोष के रूप आकारवाली शिला की पूजा भी आरम्भ हुई।

यह लेखक का अपना अनुमान है, हालांकि पुराणों में (ब्रह्म वैवर्त पुराण आदि) पूजा पद्धति के जो विवरण मिलते हैं, उनसे इस मत का समर्थन होता है। एक उदाहरण लीजिये—"शिला अर्चना" नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ६९ में लिखा है:—

त्रयम्बक स तु विज्ञेय यो विन्दुत्रय भूषितः
शुलाकारा तथारेखा गतः पुंगस्त प्रदायकः।

अर्थात् त्रयम्बक लक्षणों से युक्त 'नारायण शिला' की पूजा करने से जिसकी प्रजनन शक्ति नष्ट हो गई हो, उसे प्रजनन शक्ति फिर से मिल जायेगी।

यह ध्यान रखा जाये कि स्त्रियों को इस शिला की पूजा करने की मनाही है। मतलब साफ है।

इस अरुचिपूर्ण प्रथा को प्रतिष्ठित और पूजनीय बनाने के लिये पण्डितों ने प्रचार चलाया कि पुरुष ही धरती का श्रेष्ठ प्राणी है। इसलिये किसी भी पूजा में उसके अण्डकोष के प्रतीक की पूजा जरुरी है। इसी सिलसिले में पुराण की सैकड़ों कथाएं बनाई गई।

नारायण शिला पर तुलसी के पत्ते रखकर पूजा करने का विधान बनाया गया। लेकिन सिर्फ तुलसी ही क्यों? तुलसी में ऐसी क्या विशेषता थी? आयुर्वेद के अनुसार तुलसी में बहुत से गुण हैं? तुलसी के पत्तों से सर्दी खांसी दूर हो जाती है। तुलसी के बीज से मूत्रांग और जननांग के रोग भी ठीक होते हैं। और भी बहुत से गुण हैं। प्राचीनकाल से ही लोग तुलसी के गुणों को देखते और उसका फायदा उठाते आये हैं। तुलसी के इन मंगल कारी गुणों के चलते ही लोगों के मन में उसके प्रति एक पूजनीय भाव सा आ गया।

खैर, जो हो। एक शिला खण्ड और तुलसी के पत्रों की पूजा को समाज में प्रतिष्ठित करने के लिए नारायण तुलसी कथा की रचना की गई (ध्यान रहे कि नारायण और तुलसी दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति अनार्य या द्रविड़ भाषा से हुई है)।

ब्रह्मवैवर्त पुराण से एक कहानी देकर हम इस निबन्ध को खत्म करेंगे। दैत्यराज शंखचूड़ एक बड़ा योद्धा था। देवता उसके डर से कांपते थे। इस शंखचूड़ को नारायण ने एकबार छल, बल या कौशल से किसी तरह मार डाला और उसे समुद्र में फेंक दिया। इस शंखचूड़ की पत्नी तुलसी थी जो बहुत खूबसूरत थी। नारायण उसके रूप पर मुग्ध थे।

लेकिन तुलसी जितनी खूबसूरत थी, उतनी ही सती भी। जिस दिन उसका पति मारा गया, उसी दिन से वह बैठी उसके लौटने को राह देख रही थी। नारायण हू-ब-हू शंखचूड़ का रूप बनाकर तुलसी के पास आये। सरल मन की तुलसी ने उसे सचमुच शंखचूड़ मान लिया। वह उससे लड़ाई की कहानी सुनाने के लिये बोली। चालाक नारायण ने भी झटपट उसे एक मनगढ़न्त कहानी सुना दी। उसके बाद यथासमय नारायण ने तुलसी के साथ रमण किया। इसी काम के लिए तो उसने सारा छल-कपट किया था। लेकिन सतीत्व के बल से तुलसी समझ गई कि यह आदमी उसका असली पति नहीं है। काफी गुस्सा हो गई वह। राज खुल जाने पर नारायण ने भी सबकुछ खोलकर बता दिया। गुस्से और दुख से तुलसी ने उसे पत्थर बन जाने का शाप दिया। नारायण ने धृष्टता के साथ कहा कि देवी, तुम्हारे शाप-मोचन के लिए ही मैंने यह सब किया है। पिछले जन्म में तुम गोलोक की लक्ष्मी और वृन्दावन की राधा थी। सुदामा के अभिशाप से तुम्हें मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ा। आज फिर से हमारा मिलन हुआ। तुमने मुझे पत्थर बनने का शाप दिया लेकिन फिर मेरा-तुम्हारा साथ बना रहेगा और इसलिए मैं भी तुम्हें यह अभिशाप देता हूं कि तुम एक पौधा बन जाओ और तुम्हारे पत्ते मेरे शरीर से लिपट कर रहेंगे। तबसे आज तक नारायण शिला पर तुलसी के पत्ते रखे जाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :—

(१) ब्रह्म-वैवर्त पुराण
(२) शिलाचक्र बोधनी—हर कुमार
(३) भारतेर खनिज—राजशेखर बसु
(४) मैनुएल ऑफ जिओलॉजी ऑफ इण्डिया एण्ड बर्मा—भाग-२
—एडविन एच० पेस्को
(५) एनिमल लाइफ इनसाइक्लोपीडिया—भाग-१
—वॉन नॉस्ट्रैण्ड रेइनहोल्ड

आभार स्वीकृति :—

(१) डा० ध्रुवज्योति मुखोपाध्याय
भू-गर्भ विज्ञान विभाग; प्रेसिडेन्सी कॉलेज, कलकत्ता
(२) श्रीमती कमला मुखोपाध्याय, हिमालय पत्रिका

यह क्या है,
ऐसा क्यों है?
मानव मात्र की
ऐसी जिज्ञासा
उसका अधिकार ही
नहीं दायित्व भी है।

अहल्या उद्धार

हम सभी लोगों को यही पता है कि अहल्या अपने पति मुनी गौतम के शाप से पत्थर बन गई थी और राम के पैरों के स्पर्श से उसका उद्धार हुआ था। लेकिन यह अद्भुत कहानी असल में बंगला के कवि कृत्तिवास और हिन्दी के कवि तुलसीदास की रची हुई है। मूल बाल्मीकि रामायण में अहल्या पत्थर नहीं, सिर्फ स्त्री है।

रामायण के आदिकाण्ड के ४८ वें अध्याय में है कि मुनी विश्वामित्र किशोर राम और लक्ष्मण को लेकर गंगा में नौका पर जा रहे थे राजा जनक के पास। रास्ते में इधर-उधर की चीजें देखते हुए राम-लक्ष्मण को बहुत सी जिज्ञासाएं होती हैं जिन्हें शांत करने के लिए विश्वामित्र उन्हें अनेक कहानियाँ सुनाते चलते हैं। उसी सिलसिले में राह में जब गौतम मुनी का निर्जन, त्यागा हुआ आश्रम मिला तो विश्वामित्र बोले—परम श्रद्धेय मुनी गौतम के इस आश्रम में अब सिर्फ उनकी पत्नी अहल्या रहती है। अत्यंत सुन्दर अहल्या के साथ इन्द्र ने व्यभिचार किया था। मुनी गौतम जलावन की लकड़ी लेने बाहर गये हुए थे। इसी मौके पर इन्द्र वहाँ गौतम का रूप धारण कर पहुंचे। अहल्या भ्रम में पड़कर इन्द्र के बुरे प्रस्ताव पर राजी हो गई। इस बीच गौतम लौटकर आये और इन्द्र रंगे हाथों पकड़े गये और सारा भेद खुल गया। क्रोध से भर कर मुनी ने इन्द्र को शाप दिया कि रे दुष्ट ! जा इस पाप के लिये तू नपुन्सक हो जा ! और फिर अहल्या से बोले—मैं चला, तुम रहो अकेली। शरीर पर राख मलकर तुम उपवास करती हुई रहो। दशरथ पुत्र राम के दर्शन न मिलने पर तुम अपवित्र अवस्था में ही मर जाओगी।

यदैतच्च वनं घोरं रामो दशरथात्मजः
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि

विश्वामित्र के मुंह से यह कहानी सुनकर राम के मन में करुणा फूट पड़ी। उन्होंने उसी समय अहल्या को दर्शन देकर पवित्र कर दिया। उधर गौतम को जब यह खबर मिली तो वे भी वापस लौट गए और अहल्या को लेकर सुखपूर्वक रहने लगे।

रामायण की अहल्या-उद्धार की इस कहानी में देशी कवियों ने बहुत सी बातें अपनी तरफ से जोड़ दीं और अहल्या को पत्थर बना दिया। फिर राम के स्पर्श से उसे पत्थर से स्त्री बनाया। मूल कहानी में हालांकि राम चरित्र का महत्व दिखलाना ही मुख्य उद्देश्य था फिर भी उसका समाज की वास्तविकता से मेल था। और चरित्र - चित्रण में भी वास्तविकता थी। समाज के महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली लोगों के समर्थन और कृपा से बहुत - से गिरे हुए लोगों को भी समाज में स्वीकार कर लिया जाता है। जाहिर है कि त्यागी हुई अहल्या को समाज में स्वीकृति दिलाना राजपुत्र राम के लिये ही सम्भव था। इसके अलावा अहल्या का बेटा शतानन्द था जो राम का गृह-पुरोहित था। इतनी बड़ी सिफारिश के रहते क्या अहल्या का उद्धार न होगा ? असल में रामायण काव्य के मूल में ही व्यक्तिपूजा की भावना है। राम को "पतितपावन" का दर्जा दिलाने के लिये ही एक स्त्री को व्यभिचारिणी बनाया गया।

लेकिन वैदिक पण्डित कुमारिल भट्ट (८वीं शताब्दी) ने रामायण की इस व्याख्या को अस्वीकार किया है। उन्होंने अपने "पूर्व मीमांसा" ग्रन्थ में कहा है कि अहल्या की यह कहानी जरा भी सही नहीं है। यह अथर्व वेद के शतपथ ब्राह्मण के सूक्त ३३-४-१८ पर आधारित है। वह सूक्त है—

उत्तीष्ठ तीग्म स्ते म्हे अभिचक्ष
इन्द्र—अहल्या सुदानव घृण्टा
प्राशुभवः ब्राह्मणस्पतिः
रुशादस्य पाजः वृशुते च्द्योरुपस्थे

सूर्य का नाम इन्द्र और अहल्या रात। 'हल' अर्थात् प्रकाश जिसका नहीं है, वही है अहल्या। सूर्य रात के आंगन में आकर उसका अन्धकार दूर भगाता है मानो उसके साथ बलात्कार कर रहा हो। गौतम एक पर्वत है। रात और अन्धेरा पर्वत के पीछे रहते हैं। उसपर तेज सूर्य (इन्द्र) की किरणें पड़ती हैं। इसी रुपक पर अहल्या की कहानी गढ़ ली गई। लेकिन वर्तमान काल के समाज वैज्ञानिक एक अलग ही व्याख्या करते हैं। उनके मत से अहल्या का अर्थ ऐसी भूमि से है जिसपर अभी तक हल नहीं चला है। अहल्या की कहानी गैरआबाद भूमि के उद्धार की कहानी है। अनार्य लोगों की कृषि-व्यवस्था को आर्यो ने ग्रहण कर लिया था। बिना जोती हुई जमीन पर हल चलाकर (बलात्कार) फसल पैदा की गई और उससे आर्य मुनियों का इधर-उधर भटकनेवाला जीवन खत्म हुआ अहल्या का उद्धार तब जीवन का गीत बन गया।

प्रयाग की रहस्यमयी सरस्वती

प्रवीर गुप्त

प्रयाग (इलाहाबाद) हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ स्थल है। प्रयाग को त्रिवेणी संगम कहा जाता है क्योंकि वहाँ तीन नदियों के मिलन की बात कही जाती है — गंगा, यमुना और सरस्वती। यह तीसरी नदी सरस्वती वहाँ अन्तः सलिला है अर्थात छिपी हुई है, याने यह नदी जमीन के नीचे से आकर इन दोनों नदियों के संगम पर आ मिलती है। लेकिन क्या सरस्वती नाम की कोई नदी असल में है भी या थी भी या यह नदी मात्र काल्पनिक है ?

देखा जाये की हम लोगों के प्राचीन ग्रन्थों में इस के बारे में क्या कहा गया है। ऋक संहिता के विभिन्न सूक्तों में सरस्वती नदी का गुणगान और वर्णन है। यह पवित्र और विराट नदी पहाड़ से चलकर समुद्र में जा मिलीं है (६/६१·२, ८/१३, ७/९५, १.२, ९६.२)। इस नदी का प्रवाह सबसे तेज है और उसमें सात उप नदियां आ मिली हैं (७/३६.६), ऋक संहिता के इस सूक्त के आधार पर लगता है कि सरस्वती नदी पर उपाख्यान रचे गये। इस नदी को श्रेष्ठ और पवित्र नदी और नदी माता कहा गया (२/४१.१६)। महाभारत में कहा गया है कि सरस्वती नदी सबसे अधिक पुण्य देने वाली उत्तम और समुद्र में जा मिलने वाली नदी है (८/१४६.१७)। कहा जाता है कि इस नदी के किनारे वेदों के खास हिस्सो की रचना हुई है, इसीलिए इस नदी के नाम पर विद्या की अधिष्ठात्री देवी की कल्पना करके उसकी मूर्ति पूजा की जाती है।

मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है, "सर्व पुण्या सरस्वत्यः सर्व गंगा समुद्रगाः" (५७,३०), याने सभी पुण्य (नदियां) सरस्वती हैं, सभी समुद्र गामी (धारायें) गंगा हैं। इसी कारण वेदों के बाद के युग में कई सारी नदियों का नाम सरस्वती था — ताकि उन्हें पुण्यशीला बनाया जा सके। सरस और वती का अर्थ है पानी से भरा रहना। चूंकि नदियां हमेशा पानी से भरी रहती थीं, इसलिए यह दूसरी नदियों को भी सरस्वती नाम से पुकारने का एक और कारण है। दूसरी छोटी-छोटी नदियों का सरस्वती के नाम से उल्लेख किया गया है—महाभारत (३/८२.५०-६०, ९/३५.७२), वामन पुराण (८४.२८), स्कन्ध पुराण (३५/३८.१०१) आदि प्राचीन ग्रंथों में।

ऋक संहिता में यह बात है कि सिंधु और सरस्वती दो भिन्न नदियां हैं (७/३६.६, ९/६४.९, ७५.४-५)। ऋक संहिता और महाभारत में इस बात का वर्णन है कि सरस्वती एक विशाल स्रोतस्विनी नदी है जिसके किनारे लोग बसे थे और सिंधु नदी के साथ उसका सम्पर्क था और इसीलिए सप्तसिंधु कहा जाता था। यूनानी सन्यासी टलेमी (प्रथम शताब्दी ई०) भारत से सम्बन्धित विवरण से पता चलता है कि आज जो पांच नदियों के मिलन से पंचसिंधु बना है उसे प्राचीन काल में सप्तसिंधु कहा जाता था और उस वक्त बाकी जो दो नदियां थी उनमे से एक है सरस्वती।

बृहत संहिता (१६.२१) में सरस्वती नदी के किनारे लोगों के निवास का उल्लेख है और उस वक्त सरस्वती और यमुना नदी के किनारे बसे लोगों के बीच सम्पर्क था (१४.२)।

महाभारत में देखने को मिलता है कि कुरू राज्य का इलाका त्रिभुजाकार था—थानेश्वर, हिसार और मेरठ शहरों को मिलाने वाला त्रिभुज। यह राज्य ३ भागों में बंटा था। पहला हिस्सा कुरू था जो गंगा और यमुना के बीच में पड़ता था दूसरा हिस्सा कुरूक्षेत्र, जिसके उत्तर में सरस्वती और दक्षिण में दृषदवती नदी थी (अरण्य पर्व, ८३२.४-५)। तीसरा हिस्सा कुरूजांगल, जिसका इलाका सरस्वती और यमुना नदी के बीच में पड़ता था (आदिपर्व, २२२.१४, अरण्य पर्व, ५.३)। मनुसंहिता में सरस्वती और यमुना नदी के बीच की जगह को पुण्य क्षेत्र कहा गया है (११.१७)। सरस्वती और यमुना दो बिलकुल अलग नदियां थीं, यह बात इस विवरण से स्पष्ट है।

सरस्वती नदी का स्रोत हिमालय का शिवालिक पहाड़ था। उसके बाद अम्बाला, कुरुक्षेत्र और थानेश्वर के बीच से बहकर शतराणा के पास घग्गर नदी के साथ जा मिलती है। इसके बाद नदी घग्गर के नाम से ही परिचित होने पर भी वैदिक और पुराण काल में उसका नाम सरस्वती ही था। उसके बाद सरस्वती नदी की नीचे की धारा बीकानेर, बहवालपुर और सिंधु इलाका के बीच से होकर बहती हुई कच्छ की खाड़ी में जा मिलती है। आज इस नदी का सूखा हुआ धारा पथ हाकरा नाम से परिचित है। नदी जहां समुद्र में मिलती थी आजभी वहां उसकी कई शाखाओं के अवशेष दिखाई देते हैं। यह सूखा हुआ धारा पथ कहीं-कहीं तो चार मील से भी अधिक चौड़ा दिखाई देता है। ई०पू० चौथी शताब्दी में सिकन्दर द्वारा भारत पर हमले और ई० नौवीं शताब्दी में अरबों के हमले के समय भी कच्छ की खाड़ी काफी गहरी थी। उपनिवेशवादी लोगों ने इसी मुहाना से होते हुए जलपथ में प्रवेश किया और सरस्वती नदी की उपत्यका में अपनी सभ्यता का विस्तार किया था।

ऋक संहिता के युग के बाद से धीरे-धीरे इस नदी की धारा क्षींण होती गयी। इसका नतीजा हम उसके बाद के ग्रथों में देख सकते हैं। महाभारत में लिखा है कि जब पाण्डव वनवास गये तब वे गंगा के किनारे से होते हुए पश्चिम दिशा में सरस्वती नदी की ओर गये जो बीकानेर के ऊपर से होकर बहती थी। नदी के धारा पथ में बीच-बीच में मरूभूमि पड़ती थी। अनुमान किया जाता है कि दो हजार वर्ष पहले राजपुताना की मरू भूमि का बनना शुरू हुआ था। सरस शब्द का मतलब होता है पानी से भरा।

माँ दुर्गा का आदि और अन्त

श्री कृष्ण चैतन्य ठाकुर

आदि में दुर्ग था और अन्त में हो गयी दुर्गा।

अगर वैसा ही हुआ तो कैसे हुआ ? आइये जरा पन्ने पलट कर देखा जाये।

हिन्दू और बंगाली समाज में अब दुर्गा पूजा समारोह के लिए उसके विवरणों की जरूरत नहीं समझी जाती है। कोई भक्ति से ओत-प्रोत है तो कोई हर्ष-उल्लास के रंग में रमा हुआ है। हंगामा है लेकिन चौदहवीं शताब्दी के किसी भी बंगाली ग्रन्थ में दुर्गा पूजा या दुर्गोत्सव के ऐसे किसी उत्सव का उल्लेख नहीं है।

सोलहवीं शताब्दी के बंगाली के प्रसिद्ध स्मार्त शिरोमणि पंडित रघुनन्दन भट्टाचार्य महाशय ने अपने २८ स्मृति निबन्ध ग्रन्थों में 'तिथि तत्व' नामक ग्रन्थ में 'दुर्गा पूजा या दुर्गोत्सव' विषय की काफी सुन्दर आलोचना की है। उन्होंने मार्कन्डेय पुराण से आलोचना को सामग्री जुटायी है। लेकिन उन्होंने दुर्गापूजा के अंतिम दिन याने विसर्जन के दिन एक और उत्सव की व्यवस्था की है, जिसका नाम है 'शाबरोत्सव'। याने शबर जाति अथवा एक प्राक-आर्य जाति का एक वार्षिकोत्सव; जो उस जमाने में बंगाल में प्रचलित था। उसे भी दुर्गोत्सव के अन्तिम दिन में अवश्य करणीय अनुष्ठान कहकर उल्लेख किया था। श्री रघुनन्दन ने कहा है कि शबर का अर्थ होता है म्लेच्छ। ध्यान रहे कि शब्द कोष में म्लेच्छ शब्द का जो अर्थ रहता है वह आज के प्रचलित म्लेच्छ शब्द से भिन्न है। उस समय का अर्थ था कि जो वेद के अर्थ का अध्ययन नहीं करते हैं और स्मृति में कहे गये आचार-व्यवहार का पालन नहीं करते, वे म्लेच्छ हैं।

भारत के प्रायः हर प्रदेश में एक ऐसा वर्ग निवास करता था जो वैसे म्लेच्छ आचार-व्यवहार का पालन करता था। वे अपनी पुरानी परम्परा के अनुसार कुछ उत्सव मनाते थे। निर्देश है कि उस उत्सव को भी दुर्गा पूजा के विसर्जन के दिन मनाना चाहिये। शाबरोत्सव में क्या-क्या किया जाता था उसका थोड़ा-बहुत विवरण तिथि तत्व में दिया गया है :—

विसर्जनः दशम्यांतु कुर्याद् वै शारदोत्सवः।
धूलि कर्दम विक्षेपैः क्रीड़ा कौतुक मंगलै।
भग - लिंगाभिधासैश्च भग - लिंग - प्रगीतकैः।
भगलिंगा क्रियाभिश्च कुर्याच्च दशमीदिने॥

श्लोक का अक्षरशः अनुवाद देना कठिन है क्योंकि बिलकुल पराया भाव और परायी भाषा है। कहा जा रहा है कि इस दशमी के दिन विसर्जन के समय एक दूसरे के बदन पर धूल और कीचड़ फेंकेंगे और मलेंगे, नाना प्रकार के हंसी-मजाक करेंगे, शारीरिक क्रियाओं को दिखाया जायेगा, नंगे आदमी का अंगभंग करेंगे, यौनांगों में उत्तेजना लानेवाले गाने गाये जायेंगे आदि, और अन्य और भी गन्दे कार्यों की बात कही गयी है।

आज कल रास्तों में जहाँ-तहाँ नाच की आदिम भंगिमाओं की बढ़ती को देखकर लगता है कि धीरे-धीरे यह सब उसी श्लोक में दिये वर्णन का अक्षरशः पालन करने की ही जी-जान कोशिश हो रही है। दुर्गा पूजा के इस अन्तिम रस्म की आलोचना करने की कोशिश में अनुसंधान करने वालों ने पाया — "दुर्ग उत्सव" और पुराण में इसी उत्सव को "दुर्गा उत्सव" कहा गया — याने आकार लगा देने भर से माने कितना बदल जाता है।

याने पहली बात थोड़ा चौंकानेवाली होने पर भी वास्तव में बात यह है कि शुरू में वेद में जो दुर्ग था माने एक प्रकार का किला, गढ़ या फोर्ट, उसी दुर्ग में परिवर्तन होते-होते बन गयी एक नारी, शत्रु विनाशिनी देवी दुर्गा। इसीलिए पुराणों में कहानी गढ़ी गयी कि महिषासुर के अत्याचार से पीड़ित देवता लोग और ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के क्रोधित चेहरों से निकली हुई एक तेज किरण से आदि शक्ति दुर्गा ने जन्म लिया। उसी के इर्द-गिर्द हर साल उत्सव होते हैं, और उसी उत्सव का नाम है दुर्गोत्सव।

ऋकवेद के कई सूक्तों में दुर्ग शब्द आया है। खासकर १/४१/३ और १/४१/४ सूक्त में कहा गया है कि "दुर्गःपुरो खंडि राजान एषां नदीभ्यः संजये दुर्मदं दुर्गवाक्षम" याने दुर्ग राजा की रक्षा करता है और दुर्मद के साथ सन्धि कर के दुर्ग राजा के डर को दूर करता है।

इन दोनों सूक्तों में दुर्ग शब्द की व्याख्या करते समय यास्क (ई० पू० ४-५ वीं शताब्दी के वेद के भाष्यकार थे) ने कहा है कि दुर्गस्तु अशकागमनम्। याने जो आसानी से पार नहीं किया जा सकता जीता नहीं जा सकता। हर राजा के पास एक दुर्ग रहता है। फिर नदी के पार जाने को भी दुर्ग कहा गया है। रामायण के रचना काल में सेतु के अर्थ में दुर्ग शब्द का प्रयोग किया गया था। आयोध्या कांड के ८०सर्ग में देखा जा सकता है कि दुर्ग और दुर्गा नामों का अर्थ बदला नही था। वहाँ दशरथ की मृत्यु के बाद भरत को अयोध्या लाने के बाद नगरी को नये ढंग से सजाने के प्रसंग में कहा गया है—

"विधमन्तिस्म दुर्गानि स्खलांचि ततस्ततः॥"

लिए दरवाजा है। दूसरी तरफ, फिर प्राक आर्य संस्कृति के मातृ सत्तात्मक रूप का बोध भी दुर्गा की नारी मूर्ति रचना में स्पष्ट होता है। प्राक आर्य गणों में सृष्टि और उदभव के मूल में नारी के जननांग को ही प्रधान माना गया। उनकी धारणा के अनुसार अगर जमीन तैयार न हो तो बीज की प्रधानता कहाँ से होगी। यह इशारा मनु संहिता में विशेष रूप से चिन्हित है। (आर्य सभ्यता मे बीज ही प्रधान है, इसीलिए शुक्र वाले वंश को चलाने की कोशिश वहाँ की जाती है। पहले के आर्यो ने इस बात को दिखाया है कि देवता लोग आकर देवियों के ही चरणों में आश्रय लेते हैं, कहीं भी देवी ने किसी पुरूष देवता का आश्रय नहीं लिया।)

इसलिए मूर्ति और माहात्म्य की कथा दुर्गा की मूर्ति के गठन में सबसे सुन्दर लोकायत जनस्रोत है।

अब यही दुर्गा नाम और दुर्गा मूर्ति की कहानी देवासुर संग्राम के रूप में आर्य और प्राक आर्यो के बीच की लंबी लड़ाई की कहानी को आत्मसात करता है और भारतीय संस्कृति के सबसे मुख्य अंग के रूप में प्रतिष्ठित है। उसके बाद आया भक्तिवाद के सुन्दर सम्बन्ध और इसमें भक्ति को शामिल किया गया। माता-पिता, मान-अभिमान, वात्सल्य, प्रेम, ससुराल-ननिहाल—ऐसी बहुत-सी बातें लोकायत कहानियों से भरपूर होकर दुर्गापूजा बन गया, जो हमलोगों के लिए शारदा बिकार आराधाना का रूप ग्रहण करता है (ध्यान रहे कि शरद ऋतु में ही दुर्गा पूजा होती है)।

इस आराधना का करीब हर चरण आम लोगों के पास से ही लिया गया है, फिर भी मूर्ति की तथाकथित प्राण प्रतिष्ठा, भोग, नैवेद्य, आभरण प्रदान और विसर्जन का अधिकार, बल्कि दुर्गा की लोकायत कहानी, वीरता सूचक युद्ध की कहानी जैसे ग्रन्थों में लिखी बातें भी पुरोहित तन्त्र की सामन्त शाही बनी हुई हैं। पुरोहित तन्त्र के अनुष्ठानिक जुल्म के नीचे लोकायत संस्कृति कुचल दी गयी है।

महाकाल पर्वत में महादेव की जटा

हीरक दास

भूटान में महाकाल पर्वत के आसपास घूमने जाने से पहाड़ की दक्षिण दिशा में एक विराट गुफा दिखाई देगा। यह गुफा बहुत प्रसिद्ध है क्यो कि इस गुफा के अंदर शिव लिंग है—तेल सिंदूर मला गया एक पत्थर, वहाँ हर दिन शिव के सिर पर जल चढ़ाने के लिए कुछ न कुछ भीड़ जरुर जुटती है। इसके अलावा गुफा शिव की जटाओं से भरा पड़ा है। और इन जटाओं से हरदम पानी चूता रहता है ये पवित्र शिव की जटाएं गुफा के छत से जमीन तक लटकी हुई हैं। देखने से बहुत कुछ वट वृक्ष की जटाओंजैसा लगता है। इन जटाओं पर साधारण ढंग के छोटे छोटे घास के अलावा दूसरा कुछ पैदा नही होता है। लेकिन आम धर्म भीरु आदमी इनको अत्यंत पवित्र शिव की जटाएं ही मानता है और दिल से इस की भक्ति करना है। मानों छोटे - छोंटे घास जटा के बाल है। महाकाल पर्वत के इस तीर्थस्थान के बारे मे किंवदंती है कि उस जटा को छूकर कोई आदमी अगर अपने दिल की कोई मनोकामना को व्यक्त करे तो वह पूरी हो जायेगी। पता नही, असल में इस विश्वास का जन्म कैसे हुआ, लेकिन आम निवास स्थलों से दूर ईस प्रकार के रोमांच कारी गुफा का कैसेपता लगाया गया और कैसे वह स्थल मंदिर में बदल गया इस संबंध में एक मजेदार कहानी प्रचलित है। पहले हम उस कहानी को कहते हैं :

बहुत-बहुत दिन पहले महाकाल पर्वत में कोई आदमी नहीं रहता था। बीच-बीच में चरवाहे गाय - बकरी चराते हुए वहाँ पहूंचते थे। इसी प्रकार का एक चरवाहा लड़का एक दिन अपने एक मात्र गाय को लेकर यहाँ पहूंचा। पेड़ की छाया में बैठे-बैठे उसे नींद आ गयी। जब उसकी नींद टूटी तो देखा कि शाम हो गयी है। आसमान काली घटाओं से छा गया है और अब आँधी आने वाली है। वह अपना बदन झाड़ कर उठ खड़ा हुआ, लेकिन उसकी गाय दिखाई नहीं पड़ी। काफी खोजने पर भी गाय को न पाकर वह दुखी मन से घर लौट पड़ा। रात में भयानक तूफान और वर्षा हुई। दूसरे दिन सुबह वह चरवाहा अपने गाँव के कुछ लोगों को लेकर गाय खोजने निकला। काफी खोजने के बाद उसी महाकाल पर्वत की एक गुफा में गाय मिली।

लेकिन गाय की हालत बहुत खराब थी। अधमरी हो गयी थी, आखिरी साँस ले रही थी। सबों ने उसे उठा कर गुफा के बाहर लाया। गाय पर कोई चोट का चिन्ह नहीं था, फिर भी गाय की ऐसी हालत क्यों हो गयी, वे समझ नहीं पाये। चरवाहे की एक मात्र गाय थी। वह काफी दुखी हो गया। और कोई उपाय नहीं देखकर वे लोग वहीं बैठ गये और भगवान को पुकारने लगे। बड़े ध्यान से भगवान को पुकारते - पुकारते कई

घंटे बीत गये। तभी एक अजीब घटना घटी। आँख के सामने अधमरी पड़ी गाय ने अचानक आँखें खोलीं, फिर कान हिलाई और पूंछ हिलाने लगी तथा धीरे - धीरे स्वस्थ होकर उठकर दौड़ने लगी। भक्ति से ओत-प्रोत चरवाहा और उसके साथियों ने समझा कि यह गुफा भगवान का घर है, और उसी की कृपा से गाय की जान बची है। वेगुफा में घूस कर ताज्जुब में पड़ गये। चारों तरफ शिव की जटायें फैली हुई हैं। ऊपर से झूल रहीं हैं। जटा में बाल भी हें। तभीं से महाकाल की पहाडी खुफा में जटाओं की पूजा होती आरही है। असंख्य लोग अपने मन के दुख को बताकर जटाओं को छूकर जा रहे हैं।

ऐसी कहानी हर आदमी के मुंह से सुनाई पड़ती है। पंडों के मूंह से भी सुनाई देती है, छोड़िए उसे, वह तो धर्मिक विश्वास की बात है। अब आइये वैज्ञानिक दृष्टि सेउस गुफा और गाय की मौत की घटना पर विचार किया जाये।

केवल इस महाकाल की गुफा में ही नही रूप कथा की कहानी में या अरब के उपन्यास जैसी कहानियों में इस प्रकार की गुफा और जटा के चित्र हमलोंगों ने देखा है ये असल में चूना पत्थर के खम्भों को छोड़कर दूसरा कुछ नहीं है। इन सभी अंचलों की शिलाओं में चूना या कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा अधिक है। वहाँ जमीन का गठन एक खास किस्म का होता है, जैसा हमारे देश में हिमालय के कई इलाकों में चेरापूंजी के पास और मध्यप्रदेश की पचमढ़ी में है।

भूटान के महाकाल पर्वत का एक बड़ा हिस्सा चूना पत्थर से बना है। उस मंदिर गुफा के आसपास एक या एकाधिक गुप्त स्रोत है। (भूगर्भशास्त्रीय समीक्षा में यह बात आज स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो चुकी है)। गुफा की छत की दरारों में से जब पानी चूता है तब उसके साथ चूना पत्थर का चूर्ण भी उसके साथ मिलकर नीचे आता है। जब यह पानी सूख जाता है तो दाना के आकार में चूना का चुर्ण जमकर कड़ा हो जाता है। इस प्रकार लगातार गुफा के छत से जमीन तक चूना के दाने जमते गये। और साल दर साल ऐसा होते-होते मिट्टी पर मोटा तह बन जाता है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में स्टालाग्माइट (Stalagmite) कहा जाता है। और ऊपर से खड़ा और बड़ के पेड़ की जटाओं जैसे झूलती हुई यह जो चूने से बनी जो चीज बन जाती है उसका वैज्ञानिक नाम है स्टालाक्टाइट (Stalactite)। ये स्टालाग्माइट और स्टालाक्टाइट कई सौ साल जम कर खम्भे के आकार के बन जाते हैं। शिव की जटा का असली रहस्य यही है।

मनुष्यों को अन्धविश्वास का फायदा उठाकर पंडे - पुरोहित लोग पुण्यार्थियों से अच्छी-खासी मात्रा में पैसा वसूल लेते हैं। 'शिव की जटा' से जो 'पवित्र' पानी गिरता है इसे भक्तों के सिरों पर छींट कर वे अपने सभी पापों के नाश होने का दावा करते हैं। जो

लोग पुण्य कमाने वहाँ जाते हैं उनको कैलशियम कार्बोनेट बिलकुल नहीं दिखेगा क्योंकि धर्मांधता वैज्ञानिक तर्क क्षमता को कुचल डालती है। इसीलिए इन सभी मन्दिरों में जानेसे समझ में आता है कि वैज्ञानिकों के कन्धों पर कितना महत्वपूर्ण और बड़ी जिम्मेवारी है जबकि उसका पालन नहीं हो रहा है।

इस गुफा में एक और 'अलौकिक' घटना घटती है जिसे देखने या सुनने से आम आदमी की भक्ति - श्रद्धा कई गुने और बढ़ जाती है। कहते हैं कि शंकर भगवान गुफा के अन्दर अधिक रोशनी पसन्द नहीं करते हैं, इसीलिए वहाँ जलता हुआ दिया या मोम बत्ती लेकर घुसने से वह थोड़ी ही देर में खुद - ब - खुद बुझ जाती है। वास्तव में ऐसा सचमुच होता भी है और इससे लोगों में आश्चर्य फैलता है। ऐसा क्यों होता है? इसका जवाब पाने के लिए पहले शंकर भगवान की शक्ति के प्रति अन्धश्रद्धा को दिल से हटाना होगा और वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर सचाई की खोज करने की कोशिश करनी चाहिए।

बरसात के समय बरसात का पानी इस प्रकार की चूना पत्थर की गुफा में चूता रहता है। बरसात के पानी में नाइट्रिक एसिड़ या विभिन्न अम्लों के कण रहते हैं। चूना पत्थर के साथ इनके मिलने से रासायनिक क्रिया होती है और कार्बन-डाई-आक्साइड गैस पैदा होता है। इस गैस में बत्ती बुझ जाती है (बत्ती जलने के लिए आक्सीजन की जरूरत होती है, और कार्बन-डाई-आक्साइड जलने की प्रक्रिया का दुश्मन है।) इसलिए गुफा में दिया या मोमबत्ती तो बुझेगी ही और वह शंकर भगवान के न चाहने पर भी बुझेगी।

इस मामले में एक और बात उल्लेखनीय है। इस प्रकार की गुफा में घुसते ही साँस लेने में थोड़ी दिक्कत होने लगती है, जैसा किसी भी तीर्थ यात्री को अनुभव हुआ होगा। इसका भी कारण वही कार्बन-डाई-आक्साइड है। लेकिन गुफा में घुसते ही भक्तों का दम बन्द होकर मर जाने का डर नहीं रहता क्योंकि यह गैस भारी है और यह जमीन पर जमा रहता है, ऊपर में स्वच्छ हवा रहती है, जिसमें साँस लिया जा सकता है। लेकिन जानवरों को दिक्कत होती है, उनकी नाक सतह के करीब रहती है, इसलिए पक्षी, मुरगी, कुत्ता, बिल्ली, गाय, बकरियों के अन्दर आने से उनकी साँस द्वारा कार्बन-डाई-आक्साइड ही शरीर में घुसता है और वह उनकी हालत को खराब कर देता है, और इससे उनकी मौत भी हो सकती है। अब उस चरवाहे और उसकी खोई हुई गाय की कहानी को उपरोक्त वैज्ञानिक तथ्य के साथ मिलाकर देखिये। अब कोई भगवान की महिमा नहीं दिखाई देगी।

हम ऐसे पहाड़ों में कितनी सारी गुफाओं की खबर नहीं रखते होंगे। हो सकता है कि किसी एक दिन ऐसी एक और गुफा में कोई एक शिवलिंग को बैठा कर एक नई "पवित्र गुफा" को चालू कर देगा और धर्म के कुछ और धन्धेबाजों का भाग्य खुल जायेगा।

:—※—:

हंस और दूध–पानी का रहस्य

श्री कृष्ण चैतन्य ठाकुर

कहते हैं कि सरस्वती का वाहन हंस में एक अलौकिक शक्ति है। हंस को अगर पानी मिला हुआ दूध पीने को दिया जाये तो वह उसमें से दूध पी लेगा और पानी को बर्तन में ही छोड़ देगा। ऐसी एक भ्रांत धारणा हमलोगों के विश्वासों के अन्दर गहरी पैठी हुई है। शायद इसका कारण हंस सरस्वती का वाहन होना ही है। वस्तुगत परीक्षण के द्वारा ही वास्तविक सचाई का पता चलता है। क्यों न आप कुछ पानी मिला हुआ दूध किसी हंस को पीने देते और अच्छी तरह देखते कि वह सचमुच उस दूध और पानी को अलग करता है या नहीं। नहीं सकेगा। साधारण बत्तख हो या राजहंस, किसी में भी ऐसी क्षमता नहीं है। दूध एक कलोयड़ीय द्रव पदार्थ है। अत्यंत सूक्ष्म कलोयड़ कणों को हंस अपनी चोंच से कभी भी अलग नहीं कर सकेगी। तब ऐसी धारणा बनी कैसे ?

यह बात सूरज की शक्ति से सम्बन्धित वेद के एक सूक्त के गलत भाष्य से निकली है। शुक्ल यजुर्वेद के १६वें अध्याय के ७४वें सूक्त में कहा गया है "हंसः सोमं अंद्भः व्यपिवत् छंदसा सुचि तथा ऋतेन सत्यम्"। इसका अर्थ होता है कि हंस याने सूर्य अपनी शक्ति के द्वारा सच और झूठ के मिश्रण से सचाई को अलग कर सकता या पी ले सकता है। और हमें भौतिक विज्ञान भी यह बतलाता है कि किसी भी द्रव में पानी या अन्य कोई तरल हिस्सा सूरज की गर्मी से भाप बनकर अलग हो जा सकता है। इसी मूल अर्थ में गोल माल कर दिया गया है। वैदिक सूक्त का 'हंस' याने सूर्य को हंस पक्षी बना दिया गया, सोम' का अर्थ लगाया गया पानी मिला हुआ दूध, और 'अपिवत्' का अर्थ पीना ठीक ही रखा गया। यह सब मिलाकर हंस में पानी और दूध अलग करने की क्षमता का प्रचार कर दिया गया। आखिर क्यों न हो, हंस को तो देवी सरस्वती का वाहन जो कहा जाता है।

बड़े दिन का पेड़

पवन मुखोपाध्याय

बड़े दिन के उत्सव के साज-सरंजाम में बहुत अधिक आकर्षित करने वाली चीज है 'क्रिसमस ट्री'। एक घने हरे टोप के आकार वाला पेड़ बड़े झलमल ढंग से सजाया जाता है। यह पेड़ घरों में, गिरिजा में, दुकानों में, हर जगह दिखाई पड़ता है। बड़े दिन के समारोह के साथ इस पेड़ का सम्बन्ध क्या है, यह प्रश्न जिज्ञासुओं के दिल में जरूर उठेगा यह क्या धार्मिक आचार पद्धति का अंग है या चमक-दमक बढ़ाने का एक साधन ? इतिहास में जो कुछ तथ्य पाये जाते हैं उसके अनुसार बड़े दिन के पेड़ के व्यवहार का प्रचलन सोलहवीं शताब्दी में जर्मनी में मार्टिन लूथर ने किया था। उस वक्त उत्तर योरप के आदि वासियों में पेड़ की पूजा का एक रिवाज था, उसी से क्रिस्टमस में पेड़ का व्यवहार किया जाने लगा।

जब जर्मनी के लोग आजादी की लड़ाई में लगे हुए थे तब कुछ जर्मन सैनिक अमरिका में इस प्रथा को ले आये और जर्मन युद्ध शिविर में एक किस्म के पेड़ को सजा-धजा कर स्थापित करके शिविर को उल्लास समारोह की सुन्दरता को बढ़ाया जाता था। उस वक्त पेनसिल्वानिया में जर्मन उपनिवेशवादी लोगों ने उत्सव के एक अंग के रूप में इस पेड़ को शामिल किया था। इसके काफी दिन बाद यूरोप में बड़े दिन का पेड़ लोकप्रिय बना। इंगलैंड में १८२१ ई० में क्रिस्टमस के दिन रानी कैरोलिन ने 'Christmas Tree' की प्रथा चालू की। १८४१ ई० में विंडसर में राजकुमार अल्बर्ट ने एक शिशु सम्मेलन में इस प्रकार के पेड़ का व्यवहार किया था। सम्भवतः इसके बाद से ही बड़े दिन का पेड़ व्यापक लोकप्रियता हासिल करने लगा।

इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि 'बड़े दिन का पेड़' धार्मिक आचार पद्धति का कोई अंग नहीं था, वह केवल हर्षोल्लास का मात्र एक साधन था। वक्त के साथ यह धार्मिक रीति-रिवाजों में जुड़ गया।

मत्स्य कन्या का रहस्य

हीरक दास

बहुत पुराने जमाने से ही हिंद महासागर में मत्स्य कन्या की कहानी का प्रचार है। बहुत से नाविकों ने इस दृश्य को देखा था कि एक औरत कमर तक पानी से ऊपर उठ कर खड़ी है और दोनों तरफ हाथ फैलायी हुई है। प्राचीन काल में पुर्तगाल और स्पेन के नाविक इनको स्त्री-मछली कहते थे। कई जगह इनकी पूजा भी की जाती थी। मत्स्य कन्या के हाथ फैलाने की भंगिमा को देखकर लगता है मानो वह पानी को आशीर्वाद दे रही है, इसीलिए कई सौ साल पहले जीव वैज्ञानिक इनको 'बिशप फिश' कहते थे।

लेकिन हाल में पता चला कि यह 'डूगं' नाम का एक किस्म का सामुद्रिक जीव है, दूसरी कोई चीज नहीं। नंगी औरत के शरीर के साथ इसका काफी मेल है। 'डूगं' के अलावा कैरिब्रियन सागर में एक और किस्म का जीव है जिसे देखकर उस समय के नाविक भूल से मत्स्य कन्या समझ बैठते थे। इसका नाम है मैनाटी। जीव वैज्ञानिक आज तक इस किस्मके प्राणियों के बारे में खास अधिक जानकारी हासिल नहीं कर पाये हैं। केवल इतना ही पता चला है कि डूगं और मैनाटी प्राणी मैरीनिया अथवा मून जाति के जीवों के बचे हुए वंशज हैं। इनके चेहरे के साथ मनुष्य के चेहरे का काफी मेल है। ओठ के दोनो ओर नाक के नीचे घने बाल हैं, छाती के दोनों तरफ दो बड़े पंख हैं। ये जीव समुद्र के पानी में सीधे खड़े रह सकते हैं। दोनों तरफ फैले हुए बड़े पंख ठीक दो हाथों की तरह दीखते हैं। बीच - बीच में मादा डूगं अथवा मैनाटी अपने बच्चों को दोनों पंखों से छाती में लगा कर रखती है। दूर से देखने से लगता है मानो कोई मत्स्य कन्या गोद में बच्चों को लेकर खड़ी है। दूर स्थित किसी जहाज या सागर तट से दिखाई पड़ने वाला यही दृश्य मत्स्य कन्या के रहस्य की अज्ञात कहानी का स्रोत है। दिन में ये चलते-फिरते दिखाई नहीं पड़ते। चाँदनी रात में ही ये जीव समुद्र की छाती पर ताँक-झाँक करते है। इसीलिए चांदनी रात की रोशनी में स्वाभाविक रूप से इन्हें मत्स्य कन्या समझने की भूल हो सकती है।

बहुत कम ही वैज्ञानिकों ने डूगं अथवा मैनाटी की चर्चा की है। इनमें अमरीकी ओ० बैरेट का नाम उल्लेखनीय है। मैनाटी के बारे में उसका कहना है कि मैनाटी का दिखाई पड़ना बहुत कठिन है। वे बहुत डरपोक जीव हैं और थोड़ी सी आवाज होने ही से वे गहरे पानी में छिप जाते हैं। खाने के वक्त वे सीधे खड़े हो जाते हैं। सिर और छाती पानी के ऊपर रहती है और दोनों पंखों का इस्तेमाल दो हाथों की तरह करते हुए पानी में पनपने वाले घास-लताओं को उठाकर मुंह में रखते हैं। वयस्क मैनाटी आठ से दस फीट

तक लम्बे होते हैं। निकारागुआ के पूर्वी किनारे पर स्थित खाड़ी, लेगून, झील या नदी के साफ पानी में मैनाटियों को देखा जा सकता है। लेकिन डूगं को समुद्र के अलावा और कहीं देखा नहीं जा सकता है। हिंद महासागर में डूगं को सबसे अधिक देखा जा सकता है। इनके पंख अंडे के आकार में होते हैं, मुंह गोल और चपटा होता है। इनका तौर तरीका, खाने की पद्धति और शारीरिक ऊंचाई मैनाटी जैसी ही होती है। लेकिन डूगं प्राणी की आकृति मैनाटी से अधिक मनुष्य से मिलता है, और इसीलिए दुनिया में सब जगह हिंद महासागर के इन डूगं प्राणियों के बारे में नाना प्रकार की दंत कथाएं और रहस्यमय कहानियाँ फैली हुई हैं।

हाथी का बेल खाना

(गंजभुक्त कपित्थ)

श्री कृष्ण चैतन्य ठाकुर

जिस प्रकार सरस्वती का वाहन हंस के मामले में वेद वाक्य उलट गया था उसी प्रकार एक और लोकोकित की गड़बड़ी भी हमलोगों के दिलों में संदेह को जन्म देता है। किवदंती है कि हाथी पूरा का पूरा बेल निगल जाता है और पेट में उसके अन्दर से गूदा, बगैर बेल के फुटे, खींच लेता है और खोखला बेल पूरा का पूरा पैखाना के साथ निकाल देता है। मानो यह कोई जादू है।

लेकिन वास्तव में ऐसा कुछ नहीं होता है। यह बिलकुल एक भ्रांत धारणा है। उन दिनों मैं काशी में पढ़ता था। एक सहपाठी के साथ शर्त लगाकर एक साधारण बेल और एक खट्टा बेल को लेकर गंगा के पार राम नगर महाराजा के हस्त बल की हाथी को खिलाया था। हाथी तो हमारी आँखों के सामने ही पटापट चबाकर बेल को खा गया। फिर भी दूसरे दिन बिलकुल भोर में जाकर महावत को दो आना बख्शीश देकर हाथी के पैखाना की छान बीन की। न, कहीं भी पूरा का पूरा बेल नहीं था। काफी खोजने के बाद पैखाने में कुछ बीज जरूर मिले। सीधी जाँच-पड़ताल का यह नतीजा देखने को मिला।

पूरी जानकारी कुछ दिन बाद मिली जब मैंने इस श्लोक को सीखा :—

आगच्छति यदा लक्ष्मीः नारिकेल फलाम्बुवत् ।
निर्गच्छति यदा लक्ष्मीः गजभुक्त कपित्थवत् ॥

याने किसी के जीवन में धन - संपदा आये तो किस रास्ते से लक्ष्मी आई है इसे कोई भी देख नहीं पायेगा, ठीक जिस तरह नारियल के अन्दर पानी आता है। और जब लक्ष्मी चली जाती है तब भी उसे कोई देख नहीं पाता है, ठीक गजभुक्त कपित्थ की तरह। यहाँ गज का अर्थ हाथी नहीं है बल्कि एक किस्म का छोटा-सा कीड़ा है। यह गज नाम का कीड़ा बेल के अन्दर ही जन्म लेता है। उसी के अन्दर उसकी वंश वृद्धि होती है और उसी में वह खाता-पीता है। उसी के कारण पूरे बेल के अन्दर खोखला हो जाता है। गज द्वारा खाया गया पूरा का पूरा बेल (कपित्थ) हल्का और खाली होकर पड़ा रहता है। ठीक जिस तरह धनी के घर गरीबी घुसती है तब सब खोखला करके वह भाग जाती है और केवल बाहरी रूप बच रहता है। देखिये मूल संस्कृत श्लोक के इस अर्थ को किस तरह विकृत किया गया।

माला बढ़ती है तो रोग दूर होता है

अशोक बंद्योपाध्याय

पहली बार जो भी इस बात को सुनेगा वह आश्चर्य में पड़ जायेगा।

एक छोटी सी माला। रोगी के सिर पर पहना देने से माला बढ़ती जाती है। एक-डेढ़ दिनों में बढ़ती हुई माला गले से छाती तक उतर आती है। ऐसा कैसे होता है? शहरों और गाँवों के हजारो लोगों का यह विश्वास है कि बीमारी के जहर को चूसकर माला बढ़ती है और उसी से रोगी का रोग छूट जाता है। लोग कहते हैं कि किसी भी बस्तुवादी तर्क अथवा वैज्ञानिक समझ के द्वारा इस रहस्य को पकड़ा नहीं जा सकता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस 'दैवशक्ति' सम्पन्न जोंडिस (पीलिया) की माला ने लोगों के अन्दर दृढ़ विश्वास जमा लिया है।

रोग का नाम है जांडिस। बड़ा ही भयानक रोग है। पूरे शरीर का चमड़ा और आँखों का सफेद वाला भाग पीला पड़ जाता है, पेशाब भी गाढ़े पीले रंग का हो जाता है। बुखार, थकावट और भूख मारे जाने के कारण शरीर बिलकुल कमजोर हो जाता है। कभी-कभी इसके रोगाणुओं के असर से बीमारी फैल जाती है। कुछ वर्ष पहले कलकत्ता और उसके पासवर्ती अंचलों में जांडिस भयानक रूप से फैल गयी थी।

हेमोग्लोबिन नामक तत्व खून को लाल रंग प्रदान करता है। स्वस्थ मनुष्य के शरीर में ये रक्त कण (RBC) बिगड़ कर पीले रंग से मिश्रित बिलिरुबिन (Bilirubin) हो जाते हैं। पहले बिलिरुबिन यकृत याने लीवर के कोष में जाता है। वहाँ से कई चरणों में यह पित्त नली (Bileduct) से होते हुए अंतड़ियों में पहुंचता है। वहाँ पाचन क्रिया चलती है। उसके बाद बिलिरुबिन का अधिकांश हिस्सा टट्टी के साथ निकल जाता है। इसलिए पैखाने का रंग भी पीला होता है। बाकी बचा बिलिरुबिन फिर लीवर से होते हुए गुर्दा द्वारा पेशाब के साथ बाहर निकल जाता है। इसलिए पेशाब का रंग भी पीला होता है। अगर कभी किसी कारणवश खून में बिलिरुबिन अतिरिक्त मात्रा में जमने लगे (याने १०० सी० सी० खून में ३ मिलिग्राम से अधिक) तो अतिरिक्त बिलिरुबिन चमड़ी और श्लेष्मा वाली झिल्ली के माध्यम से बाहर निकल आता है। तब शरीर बुरी तरह से पीला हो जाता है, और समझ में आता है कि जांडिस का हमला हुआ।

इसी कारण पीले रंग के बिलिरुबिन का इतना प्रभाव है। इसके चलते कई प्रकार से रोग पकड़ता है। रक्त कण असामान्य तेजी के साथ टूटने के चलते या पित्तनाली बंद होने के कारण यह रोग हो सकता है; लेकिन मुख्यतः यकृत के बिगड़ने के कारण ही

जांडिस का हमला होता है। यकृत के कोषों के बीमार पड़कर कमजोर होने से उनकी कार्य क्षमता नष्ट हो जाती है। शरीर में पैदा होने वाला बिलिरूबिन अपने स्वाभाविक ढंग से यकृत से बाहर निकल नहीं पाता है, और वहाँ जम जाता है। इसी से जांडिस (हेपोटोसेल्यूलर) होता है। बैक्टीरिया, वाइरस अथवा नाना प्रकार की दवाओं की प्रतिक्रिया से यकृत (लीवर) के बिगड़ जानेसे जांडिस जन्म लेता है। साधारणतः हम जिन जांडिस के रोगियों को देखते हैं प्रायः वे सब इस संत्रामक हेपोटाइटिस वाइरस के शिकार रहते हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वाइरस हेपोटाइटिस जांडिस की मुख्य दवा मानी जाती है—पूर्ण विश्राम, सही पथ्य और साफ पानी। अगर रोगी को पूरा आराम मिले तो वाइरस के शिकार शरीर में वाइरस विरोधी एंटीबाडी काफी मात्रा में बनते हैं। ये ही एंटीबाडी लड़ाई करके वाइरस को नष्ट करते हैं और यकृत को स्वस्थ बनाते हैं। इसीलिए ठीक से विश्राम मिले तो अपने आप बीमारी ठीक हो जाती है। लेकिन खाने के विषय में विशेष सावधानी बरतना जरूरी है। तेल, घी, डालडा जैसे चर्बी वाले पदार्थों का सेवन बिलकुल नहीं करना चाहिए। शरीर में ग्लूकोज की काफी मात्रा में जरूरत होती है। पानी उबाल कर पीना चाहिए।

इन सब नियमों में अवश्य ही माला से सम्बन्धित कोई बात नहीं है। लेकिन कई लोग माला पहनते हैं और माला बढ़ता भी है तथा बीमारी दूर होने से माला के प्रति भक्ति-श्रद्धा बढ़ती भी है। इसके रहस्य का पता लगाने के लिए थोड़ा बिस्तार से मामले की छान-बीन जरूरी है।

जांडिस की माला कोई शास्त्रसम्मत और प्ररीक्षित चिकित्सा पध्दति नहीं है। यह बिलकुल टोटका वाला इलाज है। एक देशी पेड़ की पतली-पतली डालियों के छोटे-छोटे टुकड़ों से यह माला बनाई जाती है। हाँ, दो-चार जगह आपां भृंगराज आदि पौधों का भी इस्तेमाल दिखाई पड़ता है। घरेलू इलाज के पीछे अक्सर कोई खास युक्ति तो नहीं रहता है लेकिन इस मामले में पहले ही जड़ी-बूटियों की औषधियों के गुण दिमाग में आते हैं। प्राचीन और आधुनिक औषधि-विज्ञान में यह देखाजाता है कि बामन हाटि या भार्गी (Clerodendron Sophonanthus, P B) यकृत की बीमारी को दूर नहीं करता; हाँ इस का जड़, (डाली नहीं) अवश्य ही खाँसी, बुखार, दमा, और गल ग्रह में फायदा करता है लेकिन जांडिस में नहीं। आपां या अपमार्ग (Achyranthes asperao linu) का पौधा भी आमाशय, पेट की बीमारी अथवा सर्दी में फायदा कर सकता है, लेकिन जांडिस में कभी नहीं। भृंगराज अथवा मार्कव (Eclypta alba) अवश्य यकृत (लीवर) की गड़बड़ी में इस्तेमाल किया जाता है लेकिन जांडिस की बीमारी के इलाज में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

एलोपैथी में विश्राम और पथ्य के अलावा, स्टेराइड का इस्तेमाल जल्दी से आराम होने के लिए किया जाता है। और आयुर्वेद में पित्त को ठण्ढ़ा करने वाला कुलें खारा, कालमेघ, हर्रा, तुलसी, हल्दी आदि के इस्तेमाल का नियम है— लेकिन बामनहाटि इनमें शामिल नहीं है। इसके अलावा ये सभी दवाइयाँ खिलाई जाती हैं ताकि ये दवाइयां रोगी के शरीर में पहुंचकर जल्दी से असर कर सकें। पहनने का कोई नियम नहीं है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में तो है ही नहीं, बल्कि प्राचीन आयुर्वेद में भी किसी दवा को पहनने अथवा छूने से फायदा करने की बात को माना नहीं गया है। तांत्रिक पद्धति में भी ऐसी कोई बात नहीं है।

याने बामनहाटी माला से जांडिस की बीमारी दूर होंने को कोई बात नहीं है। फिर भी माला बढ़ती है, क्यों? तब क्या बीमारी दूर होने के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए एक जाँच की गयी थी।

२४ घन्टे से अधिक समय तक एक जांडिस के माले को झुला कर रखा गया था, किसी जांडिस के रोगी के गले में नहीं। एक चादर से ढंके टेबुल के ऊपर। फिर भी माला उसी तरह से बढ़ा जैसे रोगी के गले में बढ़ता है। चार बार माला का फोटो लिया गया - सुबह १० बजे, दोपहर ४ बजे, दूसरे दिन ८ बजे सुबह और दोपहर १२ बजे। याने माला हमेशा और हर जगह बढ़ता है। माला गूंथे जाने की कला के प्रभाव से बढ़ता है। बामनहाटि की डाली को पहले छोटे छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है। तब एक - एक टुकड़े को आड़े-तिरछे ढंग से पकड़ कर एक दूसरे से सटा-सटा कर बाँधा जाता है। टुकड़ों को बाँधने और गाँठ बाँधने में ही खास कारीगरी रहती है। इस गांठ का अंग्रेजी नाम है शिफर्स नाट (Schiffer's knot) या सेलर्स नाट (Sailor's knot)। कोई बहुत जटिल गाँठ नहीं है, केवल लकड़ी में सूता फंसाना। इस प्रकार लकड़ी के टुकड़े एक दूसरे से सटे रहते हैं, लेकिन जैसे-जैसे माला सूखता जाता है लकड़ियाँ पतली होती जाती हैं, और सूते की पकड़ ढीली होती जाती है। नतीजे में दो टुकड़ों के बीच की दूरी बढ़ जाती है। इससे माला भी बढ़ती है (चित्र को फिर से देखिये, मामला साफ समझ में आ जायेगा)। इस प्रकार आज का छोटा सा माला कल लम्बा सा हो जाता है।

यही है रहस्य। किसी भी फूली हुई डाली के टुकड़ों को शिफर्स (या सेलर्स नाट) से गूथ कर बनाया गया माला हमेशा बढ़ता है। वह स्वस्थ आदमी पर भी बढ़ता है और अस्वस्थ पर भी बढ़ता है। पागल हो या बुद्धू, उन पर भी बढ़ता है। दीवार पर लटकाइये या टेबूल पर रखिये, वहाँ भी बढ़ेगा। इसलिए वामनहाटि यकृत या पित्त की कोई जड़ी-बूटी न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। इसकी डाली फूली हुई स्थिति से सूखने

पर काफी पतली हो जाती है और माला बढ़ने का अंदाज इसमें साफ दिखाई पड़ता है। इसी कारण आर्पा, अरहर आदि पौधों की कूनी गदराई डालियों से भी जांडिस का माला बनाया जा सकता है। एक माला गले में डालने से अपने आप बढ़ जाता है। और इस चकाचौंध वाली घटना पर तार्किक ढंग से विचार न करके भगवान और किसी अलौकिक शक्ति के प्रभाव की बात को इससे जोड़ने से क्या सामाजिक प्रभाव और व्यवसायिक लाभ पर एकाधिकार कायम करना कुछ कठिन है ?

लेकिन अन्य बीमारियों को छोड़कर सिर्फ जांडिस के लिए इस माला का प्रयोग क्यों किया जाता है ? —कहना कठिन है। असंख्य किंवदंतियों और संस्कारों की तरह सभी घरेलू इलाजों का सही स्रोत खोज पाना प्रायः असंभव है। किसी असम्बद्ध घटना से भी इसकी शुरुआत हुई होगी। जो इस माला को देते हैं वे पारिवारिक पृष्ठभूमि, स्वप्न में प्राप्त आदेश, किसी अज्ञात साधु के निर्देश अथवा अन्य कोई रहस्यमय कारण का हवाला देते हैं, साथ ही लोगों का विश्वास पाने के लिए कुछ और नियम - कानूनों को भी जोड़ देते हैं।

कलकत्ते के दर्जीपाड़ा के मित्तिर घर की बात को कई लोग जानते हैं। सौ साल से अधिक पहले से वहाँ हर शनिवार जांडिस का माला दिया जाता है। कहते हैं कि तीन चार पीढ़ी पहले इस मित्रा जमींदार के घर के सरकार महाशय बंगाल के अंबिका-कालना ग्राम में इस माला के जांडिस दूर करने के गुण को देखकर इसे जमींदार के घर में ले आये और तभी से यह चालू है। अब यह मित्रा परिवार के घर का पारिवारिक धंधा है। घर की छोटी सी लड़की भी तेजी से सिफर्स गाँठ वाला माला खेल-खेल में बना दे सकती है। लेकिन वे भगवान या किसी आधिभौतिक शक्ति की बात का उल्लेख नहीं करते।

फिर भी सवाल उठ सकता है कि अगर कुछ भी गुण न हो तो माला पहनने वाले कई सारे रोगी ठीक कैसे हो जाते हैं ? इसका जवाब बहुत आसान है। पहले ही कहा जा चुका है कि अधिकांश जांडिस पूर्ण विश्राम और सही पथ्य के असर से खुद - ब - खुद बगैर किसी दवा के ठीक हो जाता है। लेकिन ध्यान देने की बात है कि जांडिस के माला के टोटका के साथ-साथ तेल, घी खाना मना भी किया जाता है, और कई लोग दो दिन स्नान न करने का नियम बताते हैं। लगता है यह भी पूर्ण विश्राम करने की धारणा से सम्बन्धित बात है। याने परोक्ष रूप से आधुनिक विज्ञान के ही निर्देश का पालन किया जाता है। इसके अलावा रोग के दूर होने में मानसिक शक्ति का भी असर रहता है। मनो वैज्ञानिक लोग भी इस बात को मानते हैं कि विश्वास से बीमारी ठीक होने की कुछ घटनायें कभी - कभी घटती रहती हैं। लेकिन इसका तो कोई स्पष्ट नियम नहीं है। मानसिक प्रक्रिया से फायदा-नुकसान, दोनो ही हो सकता है, बड़ी बात तो यह है कि इस

महान निर्भरशील माला के ऊपर भरोसा करके रोगी को छोड़ कर बैठे रहने से खतरे की काफी आशंका रहती है (किसी भी बगैर जांच किये गये घरेलू इलाज में नुकसान का डर रहता है)। किसी प्रकार का निदान (डायग्नोसिस) अथवा इलाज नहीं किये गये हेपाटाइटिस रोगी का लीवर नष्ट होकर उसके 'कोमा' (मूर्छा) की अवस्था मे चला जाना अस्वाभाविक नहीं हैं। इस तरह से मौत की कई घटनायें घटी हैं (द्रष्टव्य — Book of Better Health, Chicago)। बच्चों के मामले में थोड़ी सी लापरवाही बरतने पर घातक परिणाम हो सकता है। मस्तिष्क के कोशों में (न्यूरोन) चर्बी का अंश रहता है। खून के साथ जाकर बिलिरुबिन वहाँ द्रव में बदल जाता है। जिससे न्यूरोन नष्ट हो जाता है। इसी के चलते बच्चे स्नायु रोग के शिकार हो सकते हैं।

अवश्य ही देशी दवाओं में काफी गुण हो सकता है। विज्ञान ऐसी संभावना से इनकार नहीं करता। इसलिए पूरी तरह जांच करके इनसे दवा तैयार करने की कोशिशें जारी रहती हैं। इस समय रूस के वैज्ञानिक लोग नये किस्म के रेशम के गोटे से जांडिस वाइरस को खतम करने वाली दवा तैयार करने में काफी सफल हुए हैं (Sc. & Eng. सोवियत इनफार्मेशन, दिसम्बर १९७९)। गोटियों का नाम काकेशश-१ और काकेशश-२ है। जापानी दाड़जा कीड़ों को लेकर भी वे अनुसंधान कर रहे हैं। हमारे देश के दारु हारिद्रा जाति के पेड़ों पर भी इधर - उधर कुछ प्राथमिक अनुसंधान होने की बात सुनी गयी है।

लेकिन संस्कारों में फंसा हुआ आदमी बड़ा ही अंधविश्वासी होता है। अलौकिकता और अध्यात्मवाद के प्रति तर्कहीन श्रद्धा उसे विज्ञान का विरोधी बना देती है। वैसी स्थिति में वैज्ञानिक विश्लेषण के खिलाफ नाना प्रकार के कुतर्क और ठगबाजी तरकीबों को उदाहरण और गवाही के रूप में पेश करने की कोशिश की जाती है। चूंकि जांडिस की बीमारी से पूरा शरीर पीला हो जाता है इसलिए ऐसी एक अवैज्ञानिक धारणा को कमजोर मन में डाल देना आसान है कि शरीर से पीले रंग के पदार्थ को निकाल देने ही से बीमारी दूर हो जायेगी। इसी आधार पर ऐसी-ऐसी अर्थहीन टोटके वाली बातें सुनने में आती हैं कि एक प्रकार के रस को हाथ में मल कर चूना के पानी से हाथ धोने से पीले कण शरीर से बाहर निकल आते हैं और रोग दूर हो जाता है, अथवा सिर पर एक मंत्र से सिद्ध जड़ी को रख कर सरसो के तेल से कुल्ला करने से मुंह से जांडिस का पीला जहर निकल आता है और रोग दूर हो जाता है। जबकि हम जानते हैं कि रोगी के शरीर में जो पीला बिलिरुबिन चमड़ा और म्यूकस मेंब्रेन में जमा है वह पसीना, लार आदि के साथ मिलकर कभी भी शरीर से छूट नहीं सकता है, बल्कि आम के पेड़ का रस हाथ में लगाकर चूने के पानी से हाथ धोने से चकाचक पीला रंग होगा (हालांकि आम रस

में बिलिरुबिन दूर करने का कोई गुण नहीं है) और सरसो के तेल का रंग खुद पीला होता है और पक्के विश्वासी आदमी को तो वह और भी अधिक पीला लग सकता है।

फिर भी अगर कोई सीना ठोक कर कहे कि, "मैंने देखा है कि रोगी के शरीर से पीला रंग निकलता है और बीमारी दूर होता है। विज्ञान-टिज्ञान से इसके कारण का पता चलाया नहीं जा सकता है।" वैसी हालत में बगैर बहस में उतरे मैं सविनय श्रद्धेय राज शेखर बसु के एक कथन के शरण में जाना चाहूंगा। करीब ५० साल पहले उन्होंने अपने 'अप विज्ञान' नामक लेख में लिखा था।

"कुछ दिन पहले 'प्रवासी' के जिज्ञासा विभाग में एक आदमी ने सवाल किया था — मछली की टट्टी से पुदीना का गाछ पैदा होने की बात सच है या नहीं। एकाधिक व्यक्तियों ने इसका जवाब दिया — निश्चित पैदा होता है, हमने इसकी जांच की है, इसे लेकर भारी बहस चली। अंततः मच्छड़ मारने के लिए तोप दागना पड़ा, सम्पादक महाशय ने आचार्य जगदीश चन्द्र की राय को प्रकाशित किया — 'पुदीना पैदा नहीं होता है।"

साभार : कलकत्ता मेडिकल कॉलेज और अष्टांग आयुर्वेद कॉलेज के चिकित्सक और शिक्षक ॥ नील मणि मित्र स्ट्रीट के मित्र परिवार के श्री क्षितींद्र चन्द्र मित्र ॥

—※※—

पुरुष वृक्ष और स्त्री वृक्ष

सुधींद्र आचार्य चौधरी

पेड़ की दिन रात सेवा की गयी, फिर भी आश्चर्य की बात है कि पेड़ में फल लगता ही नहीं है। सब लोग बोलने लगे कि वह स्त्री पेड़ नहीं है, वह पुरुष पेड़ है।

लेकिन इस पर इतना सोचना क्यों? एक बड़ी-सी लकड़ी की कील लाकर पेड़ को छेदकर 'खिल' देने ही से काम बन जाता है। तब पेड़ फलवती हो जाता है। और हुआ भी वही, पुरुष स्त्री बन गया। क्या यह एक अजीब बात नहीं लगती है? जबकि इस तरह के पेड़ के तने में 'कील' गाड़कर अथवा डाली को मरोड़ कर तोड़ कर फलहीन पेड़ में फल लगाने की तरकीब का प्रयोग गाँव के लोग अकसर करते रहते हैं।

अवश्य ही पेड़ के इस लिंग भेद का मामला हमारे प्रचलित सेक्स की अवधारणा से बिलकुल अलग है। असल में जिस खास हार्मोन के कारण फल होता है उसमें हेर-फेर होने ही से पेड़ का पुरुष और स्त्री गुण प्रकट हो जाता है। पुरुष पेड़ और स्त्री पेड़ कहने में असल में मामला हार्मोनों के संचार का है। इस मौलिक कारण को ध्यान में रखते हुए आजकल वैज्ञानिक खेती में हार्मोन के प्रयोग की कोशिश चल रही है।

जिस तरह पुरुष पपीता के पेड़ में कील जैसी लकड़ी गाड़ने का रिवाज है। इससे मिट्टी से जो खनिज और लवण पेड़ों की डालियों और पत्तों में पहूंचते हैं उसका रास्ता थोड़ा सा बदल जाता है। इससे जिब्बारेलिक अम्ल, इंडोल एसेटिक अम्ल जैसे हार्मोनो की मात्रा में हेर फेर होता है। इसीलिए बाद में धीरे-धीरे पेड़ में फूल और फल लगते हैं।

कहते हैं कि आंध्र प्रदेश के लोग ताड़ का पेड़ देखते ही बता दे सकते हैं कि वह पेड़ पुरुष पेड़ है या स्त्री पेड़। साधारणतः पुरुष ताड़ का पेड़ सीधे खड़े बढ़ता है और स्त्री पेड़ टेढ़ा बढ़ता है। फिर जब नारियल के पेड़ में केवल काँदी फला हो, याने फूल आया है तो काँदी के मूल में भारी ईंट बाँध दिया जाता है। ईंट के भार से पेड़ के झुक जाने से पेड़ के हार्मोनों की मात्रा ठीक रहती है। इसके फलस्वरुप असमय ही फूल झड़ नहीं जाता है और पूरी तरह नारियल बन भी पाता है।

कुम्हड़ा, खीरा, कद्दू आदि पेड़ों में कई बार देखा जाता है कि फूल लगा है लेकिन फल नहीं हो रहा है। तब फूल समेत उस पुरुष डाला को मरोड़ कर साथ ही साथ उसे सीधा करके मरोड़ी गयी जगह पर मिट्टी थोप दिया जाता है। डाली फिर से जुड़ जाने से स्त्री-फूल निकल आता है और फल होता है। याने हार्मोनों का संचार सही तरीके से होने ही से फूल से फल बनता है, और नहीं तो घरेलू या देशी तरीके से या आधुनिक वैज्ञानिक उपाय के द्वारा पेड़ में जरूरी हार्मोनों का संचार करना पड़ेगा। आम के पेड़ में जब फूल नहीं होता है तब हार्मोन स्प्रे करके फल - फूल दोनों पैदा किये जा सकते हैं। मालदा - मुर्शिदाबाद के कई सारे धनी किसान इस तरीके का इस्तेमाल करते हैं।

खराब हवा की कहानी

अनसूया मुखोपाध्याय

दक्षिणी चीन की सीमा का सिवयांपाना प्रदेश बर्मा और लाओस से लगा हुआ है और थाई लोगों से भरा इलाका है। १९५३ ई० के जूलाई महीने में खबर आई कि इस अंचल के कई गाँवों में दुष्ट देवता का फिर से प्रकोप हुआ है। खराब हवा तेजी से बह रही है, लोग मर रहे हैं, लोग डरे हुए हैं, त्रस्त हैं और आतंकित हैं। सिवयांपाना के जन स्वास्थ्य ब्यूरो में यह खबर पहूंची। ब्यूरो के प्रमुख डा० चाउ ची के खुद जन स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं के एक दल को लेकर उस इलाके में पहूंचे। सचमुच अजीब मामला था। हर ग्रामीण दिन की रोशनी में ही भीषण रूप से डरा हुआ है। लोग कहते थे कि दिन में ही खराब हवा का असर अधिक हो रहा है। सभी लोग बिलकुल भोर में उठकर फटाफट हाट-बाजार का काम पूरा कर लेते हैं और सूरज के उदय होते ही घर में घुस कर चिटकनी लगा लेते हैं। हर साल ऐसी हवा आती है। दिन की रोशनी में ही लोग कहते हैं कि, कहीं से कुछ विषैले कीड़े आकर हवा को विषाक्त कर देते हैं। उस हवा के शरीर में लगने से...

लोगों ने नाना प्रकार की बातें बताई। लेकिन डा० चाऊ ने गहराई से हर बात की छान - बीन की। उन्होने हर स्वस्थ और अस्वस्थ ग्रामीण को देखा, पानी और मिट्टी को जाँचा, घर-द्वार हर चीज को देखा। पूरी छान-बीन के बाद उन्होंने निर्णय लिया कि यह खराब हवा असल में मलेरिया है। सिवयांपाना प्रदेश का यह इलाका एक घिरा हुआ परती जमीन है। हर वर्ष मई से अक्टूबर के महीने तक यहाँ का तापमान काफी अधिक रहती है — ३० डिग्री सेन्टीग्रेड (८६ डिग्री फारेन हाइट), यह बारिश का मौसम भी होता है। कुल मिलाकर परिवेश मच्छड़ों के लिए बहुत अनुकूल रहता है। गड्ढों, तालाब आदि में मच्छड भरपूर अण्डे देते हैं और बेरोक उनकी वंश वृद्धि होती रहती है। इसके फलस्वरूप पूरा ग्रामांचल मलेरिया का शिकार रहता है। आम आदमी यह सब नहीं समझता। वह तो बस इसे 'खराब हवा' मान लेता है। डा० चाउ ची के ने देखा कि यहाँ के अधिकांश बच्चे कमजोर हैं, खून की कमी के चलते उनका शरीर पीला हो गया है। पेट फूला हुआ है। प्लीहा बढ़ा हुआ है। बिलकुल मलेरिया के लक्षण हैं।

इसके बाद व्यापक रूप से इलाज का अभियान शुरू किया गया। कई चिकित्सक दल उस गाँव में जाकर बिना पैसा लिए इलाज करने और दवा देने लगे और उसके साथ ही स्वास्थ्य को ठीक रखने के तौर-तरीके सिखाने लगे। अपने-अपने घरों और आस - पास की जगह को साफ रखना, बुरी और गलत आदतों को छोड़ना, पुराने खयालों के अन्दर सही और गलत समझ कर स्वीकार करना अथवा छोड़ना — इन सभी बातों में दिलचस्पी

दिखाई जाने लगी। अवश्य ही, इसके साथ ही पुरातन पंथी प्रगति विरोधी लोग इस अभियान का विरोध भी करने लगे।

धीरे-धीरे ग्रामीणों की हालत सुधरने लगी। लेकिन विरोधी लोग इससे घबड़ाये नहीं वे कहने लगे कि यह सब वैज्ञानिक चिकित्सा - टिकित्सा बेकार चीज है, असल में वे किसी छल से हवा में से शैतान को भगाने की कोशिश कर रहे हैं। इसके बाद मेडिकल टीम ने सब लोगों के सामने मलेरिया रोगी को दवा, सूई देकर लोगों को दिखाया कि किस तरह रोगी स्वस्थ हो उठा है। यह तो एक जीता जागता प्रमाण था। इसमें संदेह की कोई संभावना नहीं थी। फिर भी दुष्ट लोगों के पास गंदे तरकीबों की कोई कमी नहीं रहती है। उन्होंने कहा कि असल में इन्जेक्शन की सूई ने आकर बीमार आदमी के शरीर में छुपे शैतान को भोंका, जिससे वह दुष्ट देवता भाग गया। लेकिन धीरे-धीरे उन सब का असर खत्म हो गया। अधिकांश ग्रामीणों ने 'खराब हवा' के भ्रम से छुटकारा पाकर राहत की सांस ली।

क्रांति के बाद चीन में ऐसी कई क्रांतिकारी घटनाएं हुई हैं। इनमें कोई भी बात गप नहीं है, सब सच है। लेकिन यह 'खराब हवा' का गप केवल १९५३ के चीन में ही नहीं बल्कि आज भी पृथ्वी के हर पिछड़े देश में एक प्रचलित अंधविश्वास है।

हमारे भारत वर्ष में तथा बंगला देश में शरीर में 'खराब हवा' लगने की बात अकसर सुनी जाती है। अस्वास्थ्यकर वातावरण तथा घटिया खाने - पीने के चलते अगर कोई बीमारी फैले तो गाँव में भूत प्रेत या बुरी हवा का अफवाह अकसर फैल जाता है जिससे ओझा लोगों का पौ-बारह रहता है। लाल चीन की तरह जन स्वास्थ्य संस्था का चिकित्सा और शिक्षा अभियान तो निश्चय ही हमलोगों के लिए अभी एक सपना जैसा है। फिर भी इस सामाजिक समस्या का रूप हर जगह एक ही प्रकार है।

श्रोत : चाइना रिकन्स्ट्रक्टस, जनवरी १९७९।

—※※—

भूत है या हिस्टीरिया

सोमनाथ भट्टाचार्य

'सचमुच भूत पकड़ा है या कोई बीमारी है?' जब घर में किसी को भूत पकड़ने की बात उठती है और विचित्र हंगामा खड़ा हो जाता है तो लोगों के दिल में यह सवाल पैदा होता है। करीब हर देश के लोगों में ऐसा एक विश्वास दिखाई पड़ता है कि भूत अथवा कोई अधिभौतिक शक्ति किसी आदमी के "सिर पर चढ़ कर" उससे नाना प्रकार के विचित्र काम करवाती है, वह बातचीत में कोई श्लील-अश्लील की परवाह नहीं करता सामाजिक नियम कानून नहीं मानता है, और जो मन में आता है सो करता है। ऐसा भी विश्वास लोगों में रहता है कि भूत भीषण क्रोधी, अभद्र और असभ्य होता है। तर्क के द्वारा इसके कारण का पता लगाया नहीं जा सकता है। असल में भूत पकड़ना एक मानसिक रोग है और अधिकांश मामलों में वह हिस्टीरिया नाम की बीमारी है। इसका सबूत पेश करना बिलकुल संभव है। भले ही कभी-कभी इसे साबित करना काफी कठिन हो सकता है।

पहले हिस्टीरिया नाम की बीमारी के बारे में जानकारी ली जाये। हिस्टीरिया की चार विशेषताएं हैं। पहला, इसमें जो सब लक्षण दिखाई पड़ते हैं उसके कोई शारीरिक आधार नहीं मिलते। जैसे, जिस व्यक्ति को हिस्टीरिया के चलते लकवा हो गया हो उसके शरीर की जाँच करके डाक्टर शरीर में कोई भी खामी पकड़ नहीं पायेंगे। असलियत में कोई शारीरिक खामी रहती भी नहीं है। फिर भी, ऐसा कौन-सा लक्षण है जो हिस्टीरिया की बीमारी में नहीं रहता है।

इस प्रकार के नकली लकवा से आरंभ करके नकली हृदय रोग, नकली पेट की तकलीफ और नकली बेहोशी — साथ ही नकली भूत पकड़ना तो है ही। हाँ, यहाँ प्रयुक्त "नकल" शब्द का अर्थ जरा ठीक से समझ लेना चाहिए। ऐसा समझने का कोई कारण नहीं है कि हिस्टीरिया रोगी को कोई तकलीफ होती ही नहीं है और सब कुछ केवल नाटक है। वैसी बात बिलकुल नहीं है। हिस्टीरिया रोगी को सचमुच कष्ट होता है, लेकिन उसका कोई शारीरिक आधार नहीं होता है, सब कुछ मानसिक होता है। मनुष्य का दिमाग पूरी तरह से शरीर पर नियंत्रण कर सकता है।

हिस्टीरिया की बीमारी की दूसरी विशेषता है चीजों को बढ़ा-चढ़ा कर पेश करना। हो सकता है कि किसी को कोई शारीरिक बीमारी थोड़ी - सी है लेकिन उसकी तकलीफ, हो - हल्ला, लोगों को बुलाना, सहानुभूति चाहना आदि की मात्रा बीमारी की

उग्रता से चौगुनी होती है। फिर कई लोग पूरी तरह स्वस्थ हो जाने के बाद भी सोचते हैं कि अभी भी बीमारी है पूरी तरह ठीक नहीं हुआ है। यह भी हिस्टीरिया ही है।

तीसरी विशेषता है—दबे हुए किसी मानसिक कष्ट से हिस्टीरिया पैदा होता है, और इससे हो सकता है कि रोगी ने एक हाथ या पाँव को नकली ढंग से लुला या लंगड़ा कर लिया और उसके बाद लूले-लंगड़े की तरह हाथ - पाँव चलाते हुए एक समय जाकर वे अंग सचमुच निकम्मे हो जाते हैं। शरीर के भीतर के अंगों के विषय में यह तरीका और भी अधिक लागू होता है। और हिस्टीरिया की चौथी विशेषता यह है कि इससे अत्यधिक मानसिक अस्वस्थता के लक्षण पैदा हो जा सकते हैं, जैसे याद्दाश्त में गड़बड़ी या बिलकुल चुप्पी मारकर एक दम जड़ हालत, नाना प्रकार की बेहोशियाँ अथवा "भूत पकड़ने" की अवस्था, चित्र - विचित्र बातें करना, एक व्यक्ति में दो या उससे अधिक व्यक्तित्वों का दिखाई पड़ना आदि।

हिस्टीरिया हमेशा ही सभी सभ्य समाजों में रहा है, और इसीलिए इस बीमारी के सम्बन्ध में नये पुराने अनुसंधान भी अनगिनत हुए और हो रहे हैं। ई० पू० जमाने में यूनान देश में भी यह रोग था। अंग्रेजी शब्द "histeria" यूनानी शब्द "hysteron" से आया है, जिसका अर्थ होता है जरायु।

प्राचीन यूनानी लोगों का खयाल था कि जरायु "बिगड़ जाने से" हिस्टीरिया होता है अर्थात् हिस्टीरिया केवल औरतों को ही होता है और उसके साथ जरायु की भी गड़बड़ी का सम्बन्ध है। भारतीय आयुर्वेद शास्त्र में भी उन्माद रोग अथवा हिस्टीरिया को ऋतुवती स्त्री का रोग कहा गया है। लेकिन आधुनिक डाक्टरों में ऐसी धारणायें नहीं हैं। फ्रायड ने स्पष्ट रुप से तमाम संदेहों से परे इस बात को साबित कर दिया है कि मर्दों को भी हिस्टीरिया की बीमारी हो सकती है। इस विचार को प्रकट करने पर शुरू में काफी हलचल हुई थी, लेकिन पुरुष हिस्टीरिया (Male hysteria) के बारे में अब किसी डाक्टर के मन में कोई संदेह नहीं रह गया है।

पिछली शताब्दी के मध्य में प्रसिद्ध फ्रांसीसी चिकित्सक लोरको बेल निश्चितता के साथ इस बात को समझ गये थे कि सम्मोहित करके किसी भी मनुष्य में हिस्टीरिया के लक्षणों को प्रकट किया जा सकता है। फिर पहले से प्रकट रोग के लक्षणों को दूर भी किया जा सकता है। हिस्टीरिया के बारे में मनोवैज्ञानिक फ्रायड के विचार को सीधे शब्दों में, संक्षेप में यूं कहा जा सकता है—

आयुर्वेद के निदान ग्रन्थ में लिखा है—

चौरे नरेंद्र पुरुषै रविभिस्तथान्यैः।
बित्तासितस्य धनबांधव संक्षयाद वा॥
गाठ क्षते मनसि च प्रिय चा रिरंसो।
जायेत चोत् कटतमो मनसो विकारः॥
चित्तं ब्रवीति च मनोतुगतं विसंज्ञो।
गायत्ययं हसति रोदिति चापि मूढ़ः॥

इस प्रकार लंबा वर्णन है। इसका अर्थ है—चौर के पीड़ा में राज पुरुष के निग्रह में अथवा किसी व्यक्ति द्वारा तकलीफ हो, धन सम्पत्ति का नुकसान हों, इच्छित वस्तु की प्राप्ति न हो और यौन संसर्ग में पूरा संतोष न मिले तो एक प्रकार का उन्माद रोग होता है। वह व्यक्ति कभी गाना गाता है, तो कभी हंसता है या रोता है, अजीब बातें करता है, कभी दौड़ कर भागता है, आदि। बाँझपन से होने वाले उन्माद या हिस्टीरिया के बारे में भी निदान ग्रन्थ में उल्लेख है।

दबी हुई स्मृति (repressed memory) से ही हिस्टीरिया रोग का जन्म होता है। जो सारी घटनायें शैशवावस्था में या बचपन में मन में भीषण हलचल मचाई हुई हों, क्षोम, दुख, गुस्सा, डर आदि भावनाओं को पैदा की हुई हों, वे ही स्मृतियाँ मन में दबी रहते - रहते किसी - किसी व्यक्ति में बाद की जिन्दगी में किसी दिन हिस्टीरिया का रूप धारण कर सकती हैं।

हिस्टीरिया रोग के रोगी में जो सब लक्षण दिखाई पड़ते हैं वे लक्षण खुद उसके पैदा किये गये लक्षण हैं, लेकिन इस तरह लक्षणों को प्रकट करने की अपनी इच्छा के बारे में वह सचेत नहीं रहता है। याने उसकी इस इच्छा का जन्म उसके अवचेतन मन में होता है और वह इच्छा उसके सचेतन मस्तिष्क पर प्रभाव कायम कर लेती है। अवचेतन मन सचेतन मन को हिप्नोटाइज (सम्मोहित) करके उसके द्वारा गुलाम की तरह मनमर्जी सारा गड़बड़ काम कराता है। लेकिन अवचेतन मस्तिष्क की इच्छाएं इतनी अजब और उल्टी सीधी क्यों होती हैं? अगर कोई भूत पकड़ने की भावना से गुरुजनों से जो भला-बुरा बकते हैं उसका अर्थ क्या है? और बेहोश होकर धड़ाम से गिर जाने से क्या फायदा है? सब चीज में ही लाभ है, और नुकसान भी है। अगर ठीक से इन लाभों और नुकसानों पर विचार करना हो तो उस खास व्यक्ति की जिन्दगी के डर, माँग, अभावों, शिकायतों की ठीक से जानकारी प्राप्त करनी होगी। लेकिन रोग लक्षणों की व्याख्या मोटा-मोटी हिसाब से की जा सकती है—अगर कोई वैसी हालत में अस्वाभाविक आचरण करे, असहाय स्थिति में पड़े तो अन्य लोग उस पर उतना गुस्सा नहीं करेंगे तथा किसी भी काम के लिए उस पर

डाँट-डपट नहीं करेंगे। इतना ही लाभ है। असल में प्यार अथवा सम्मान पाने के लिए अथवा सोई हुई इच्छाओं की पूर्ति के लिए यह एक सशक्त प्रयास है, जो मनमौजीपन का एक विकृत प्रकाश है। "भूत पकड़ने" से इच्छानुसार किसी भी गुरुजन को कठोर बातों से चोट पहूंचाया जा सकता है। कई प्रकार का घटिया बचपना किया जा सकता है। यह सब काम "भूत नहीं पकड़ने" से करना बिलकुल संभव नहीं है। इसीलिए सारी घटना को जानने के बाद जब मानसिक रोगी को इन सारी बातों से अवगत करा दिया जाता है, तब कई सारे मामलों में रोग दूर हो जाता है।

प्रोफेसर गिरींद्र शेखर बसु ने अपनी "स्वप्न" नाम की किताब में हिस्टीरिया रोगी के बारे में जो कुछ कहा है उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं "बिलकुल शैशवावस्था की कई घटनाएं याद्दाश्त से एकदम मिट जाने पर भी मस्तिष्क के अज्ञात स्थान में उन स्मृतियों का रहना असंभव नहीं है। एक हिस्टीरिया ग्रस्त औरत बेहोशी में विशुद्ध हिब्रू भाषा में अनर्गल बोलती थी, जबकि स्वस्थ हालत में उसे हिब्रू भाषा की जानकारी का कोई चिन्ह भी कभी नहीं दिखा था। इसलिए कई लोगों इस घटना को "भूतावेश" मान लिया। लेकिन छान-बीन करने से पता चला कि वह औरत शैशवावस्था में एक पादरी के घर में पली थी। पादरी हर दिन ऊंची आवाज में हिब्रू बाइबिल का पाठ करता था। उस औरत की याद्दाश्त से शैशवावस्था की यादें बिलकुल खतम नहीं हुई थी। स्वस्थ हालत में उसकी स्मृति का पता नहीं चलता था, लेकिन मूर्छा के वक्त प्रकट होता था।

"एक बार मैं (याने प्रोफेसर गिरींद्र शेखर बसु, महाशय) एक 'भूत से ग्रस्त' रोगी औरत का इलाज करने गये। औरत कम उम्र की थी और मूर्छा के समय बोलती थी कि उसका फलाना नाम है; उसका फलाना गाँव है आदि। पति से झगड़ा होने के चलते उसने गले में रस्सी डाल कर आत्म हत्या कर ली, इस रोगिणी को आशुचि को हालत में पाकर उसके ऊपर आविष्ट हुआ है। आश्चर्य की बात है कि रोगी औरत के पिता ने पोस्टल गाइड दिखाकर उस ग्राम को खोज निकाला और वहाँ के पोष्ट मास्टर को लिख कर खबर पाया कि सचमुच चार - पाँच साल पहले एक औरत ने वहाँ अपने पति से झगड़कर आत्महत्या की थी। रोगी औरत के लिए उस औरत का नाम-धाम जानना संभव नहीं था, इसलिए भूताबिष्ट समझकर ओझा के द्वारा पहले उसका इलाज कराया गया था। रोगिणी से उसकी स्वस्थ हालत में कई बार सवाल करके मैं कुछ भी जान नहीं पाया। सच्ची बात तो यह है कि कई दिनों तक मैं इस मामले के असली रहस्य का पता नहीं लगा पाया। हठात् एक दिन उस औरत को मूर्छा के वक्त मैं हाजिर हो गया। मूर्छा खत्म होने तक इन्तजार किया। घर में दीवार पर ताक पर बंगवासी पत्रिका के कुछ पुराने अंक पड़े थे। समय काटने के लिए मैं उनको उलट रहा था, उस दौरान रोगिणी के मुंह से सुने गये

गाँव का उल्लेख किसी अंक में हठात देखकर मेरे अन्दर जिज्ञासा हुई। पढ़कर देखा कि बंगवासी के संवाददाता ने लिखा था कि फलाना नाम की औरत ने पति से झगड़कर आत्म हत्या की थी। इतना पढ़कर पूरा मामला मेरे सामने पानी की तरह साफ हो गया। हिस्टीरिया ग्रस्त उस औरत ने कभी न कभी उस खबर को पढ़ा होगा और अनजाने में इस घटना ने उसके दिमाग पर असर किया होगा। मूर्छा के वक्त कल्पना में वह अपने को आत्महत्या करने वाली प्रेतात्मा द्वारा आविष्ट समझती थी। मुर्छा खतम होने के बाद मैंने रोगी स्त्री को बंगवासी के उस अंक को दिखाया। उसके बाद उस औरत को फिर कभी मूर्छा नहीं आयी। मौके से हाथ में उस अंक के पड़ने के चलते असली रहस्य का पता चला, नहीं तो अन्य किसी तरीके से घटना के सही कारण का पता चल पाता या नहीं, कहना मुश्किल है।"

कई बार अवश्य इस प्रकार घटना की सही पृष्ठभूमि का पता नहीं चलता है, जिस तरह डा० बसु बंगवासी पढ़ना अचानक ही हुआ था। उन्होंने खुद ही कहा है कि बंगवासी के अंक में इस घटना को नहीं देखने से वह घर के लोगों के सामने इस बात को प्रमाणित नहीं कर पाते कि मामला भूत पकड़ने का नहीं है। अगर मनो चिकित्सक किसी बीमारी (हिस्टीरिया) के असली मतलब को खुद समझ लें तो उससे बीमार व्यक्ति या समाज उपकृत नहीं होगा, बल्कि वे अपने विश्वास को पकड़कर लटके ही रहेंगे। रहस्य के सूत्र का पता लगा कर लोगों को उसे साफ न दिखा देने से अलौकिकता की धारणा दिमाग से उतरती नहीं है। ऐसे और भी कई प्रश्न किये जाते हैं, जैसे हिस्टीरिया होने से रोगी के शरीर में ताकत इतनी अधिक हो जाती है कि रोगी दाँतों से पूरे एक पानी से भरी हंडी को उठा लेता है हममें से कइयों ने ऐसी घटना सुनी है। जिस घटना को करीब से देखा वैसी एक घटना सुनाता हूं। एक बार एक ८-९ साल के लड़के की माँ अपने पति और सास से झगड़कर घर छोड़कर चली गयी। लेकिन लड़के को माँ के साथ जाने नहीं दिया गया। तब लड़का रोने लगा और दौड़कर भागने की कोशिश करने लगा। उसे उसकी दादी और पिता पकड़कर रखने की कोशिश कर रहे थे और लड़का उनका हाथ छुड़ा कर भागने की कोशिश कर रहा था। धीरे-धीरे मामला इस हद तक पहूंच गया कि पूरी ताकत से दो वयस्क लोग उस लड़के को पकड़कर रख नहीं पाते थे! लड़का किसी भी तरह रुकता नहीं था। आखिर जब पिता लड़के को रिक्शा में लेकर माँ के पास पहूंचा दिया तब जाकर सब शांत हुआ। अगर एक छोटा लड़का अपने दिलो जान से दिमाग को एक जगह केन्द्रीभूत करके जोर लगाये तो उसे पकड़ रखना कोई आसान बात नहीं होगा। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। असल में यह सब मूर्छा का ही मामला है। गुस्से की हालत में मनुष्य क्या कुछ कर सकता है यह कहना मुश्किल है।

ओझा के झाड़ फुंक से या ताबीज से हिस्टीरिया ठीक होता है या नहीं यह एक सुपरिचित प्रश्न है। एक कहानी के माध्यम से मैं इसका जवाब देता हूं। एक १३-१४ साल की लड़की रात में सोने के वक्त बिछावन पर पेशाब कर देती थी। मेरा एक दोस्त उस इलाके में एक प्रतिष्ठित आदमी था। उन्होंने कहा "मैं ताबीज दूंगा जिससे यह ठीक हो जायेगा। कल सुबह खाली पेट, नहा कर, साफ कपड़े पहन कर आओ।" वैसे ही वह गयी। दोस्त ने ताबीज दिया और उसी दिन से बिछावन पर पेशाब करना बंद हो गया। मैंने पूछा, "ताबीज के अन्दर क्या रखे थे ?" दोस्त ने हंस कर जवाब दिया, "कुछ नहीं"। लेकिन उसी से ठीक हो गया। लेकिन असलियत में ठीक कैसे हुआ ?—आस्था से। मेरे उस दोस्त के निर्देश अथवा नियमों से लड़की के मन के एक हिस्से ने दूसरे हिस्से पर हावी (hypnotise) होकर समझा दिया, "इसी से ठीक हो जायेगा" और उसने सचमुच दवा का काम किया। यह विश्वास से ठीक होने का रहस्य। मनोवैज्ञानिक लोग कहते हैं कि शरीर के (और मन के) अधिकांश रोग मन की कमजोरी के चलते ही होते हैं, और मन की ताकत से ही उनको दूर भी किया जा सकता है। अगर कोई कहे, "कहाँ, मैं तो नहीं सका"—लेकिन इससे सिद्धांत की असफलता साबित नहीं होती। असलियत में परिस्थिति और रोगी के बीच समन्वय ठीक से होने से ही प्रक्रिया सफल होती है। हाँ, इस विचार के साथ-साथ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसी कई शारीरिक गड़बड़ियाँ हो सकती हैं जिन्हें केवल विश्वास और आस्था(यानें मन की ताकत) की ताकत से ठीक करना असम्भव है, यह एक अन्य विचारणीय प्रश्न है।

ओझा के झाड़-फूक में विश्वास के खेल के अलावा अवश्य एक और तरकीब भी है। वह है मंत्र और लाठी की दवा। ओझा लोगों के मंत्रों को इकट्ठा करके मनोवैज्ञानिकों ने उनका विश्लेषण किया। इन सब मंत्रों में छिपी हुई या स्पष्ट अश्लील और क्रूर अर्थ प्रकट करने वाली बातें हैं वे मन पर काफी गहरा असर डालती हैं। तिरस्कार या गाली-गलौज अथवा गंदी गालियाँ जिस प्रकार मन को हिला दे सकती हैं वही असर मंत्रों का होता है। मार-पीट और गाली-गलौज से सब को डर लगता है, और हिस्टीरिया रोगी को भी डर होता है। उससे भी तात्कालिक रूप से बीमारी दूर हो जाती है। अवश्य मार के डर के अलावा अचानक चोट पहूंचा कर मन के गाँठ खोलना अवैज्ञानिक पद्धतियों में भी है जिस पर आधारित होकर नाना प्रकार की सदमा इलाज (shock theraphy) निकाली गई है। एक बात निसंदेह आज साबित हो चुकी है कि भूत पकड़ने का मामला एक मानसिक रोग मात्र है और अधिकांश मामलों में वह हिस्टीरिया ही है। इसे पूरी तरह ठीक करने के लिए मनो रोग चिकित्सकों के पास आधुनिक पद्धति से इलाज कराना जरूरी है। दूसरे प्रकार से, यानें डर दिखाकर या पीट कर ठीक करने से रोग किसी और रूप से प्रकट हो सकता है, और तब वह और भी खतरनाक और पीड़ा दायक हो सकता है।

रात की पुकार

धीरेन गांगूली

कई लोग नींद में दरवाजा खोल कर बाहर निकल जाते हैं और उनको मालूम नहीं रहता कि वे कहाँ जा रहे हैं। इसी को कहा जाता है 'रात की पुकार'। 'रात की पुकार' एक सुपरिचित अंधविश्वास है। हाँ, निरा अंधविश्वास। भले ही इस पर जितने भी गप, कहानियाँ और लेख हों और तांत्रिक लोग शीशा का मुंह खोल कर आत्मा को बंद करने का डर दिखाने का, हंगामा करें, असलियत में 'रात की पुकार' मात्र एक मानसिक रोग है। मनोविज्ञान की भाषा में इस रोग का नाम है सोमनाम्बुलिजम (Somnambu-lism) याने स्वप्नचारिता। रोगी अतीत की किसी घटना अथवा ख्याल के प्रभाव में घूमते हुए हालत में अनजाने कुछ काम कर जाता है।

मनोरोग के विशेषज्ञ कहते हैं कि सोमनाम्बुलिजम हिस्टीरिया रोग की एक खास दशा है। हिस्टीरिया रोग के चलते दिमाग के विभिन्न हिस्सों की प्रक्रियाओं में बाधा आती है। आम तौर पर हम ऐसा जानते हैं। लेकिन फिर हिस्टीरिया की विभिन्न दशायें हैं और उन दशाओं के लक्षण भी अलग-अलग होते हैं। शरीर लकड़ी जैसा सख्त होकर बेहोश हो जाना ही हिस्टीरिया का एक मात्र रूप नहीं है। रोगी अचेत नहीं भी हो सकता है, उसके अन्दर दो व्यक्तित्व काम कर भी सकते हैं। किसी अन्य व्यक्ति के गले की आवाज से कुछ अस्वाभाविक बातें कहना अथवा आचरण करना भी देखा जा सकता है (जिस तरह भूत पकड़ने के वक्त देखा जाता है। ये हिस्टीरिया रोग के ही लक्षण हैं, यह बात हममें से अनेक चिकित्सा विज्ञान की मदद से जान चुके हैं।) उसी तरह स्वप्न में चलना भी हिस्टीरिया से उत्पन्न दिमागी गड़बड़ी के कारण ही होता है।

मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों की खास-खास भूमिकायें रहती हैं। विभिन्न हिस्सों के कामों में कुशल आपसी सामंजस्य और समन्वय भी रहता है, जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क हमारे शरीर और मन को सुसंगठित और स्पष्ट निर्देश देकर संचालित कर पाता है। मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों के बीच के इस समझौते में कोई कमी होने से मस्तिष्क का निर्देश भी अस्वाभाविक रूप से बेढंगा हो सकता है और तभी मनोरोग का जन्म होता है और आदमी का आचरण भी अस्वाभाविक हो जाता है। सोमनाम्बुलिजम की बीमारी में दिमाग का एक खास हिस्सा प्रभावित होता है विशेष कोई सदमा पहूंचाने वाली घटना अथवा डर के ख्याल से। वैज्ञानिक लोग इसे मस्तिष्क के उस हिस्से का विलगाव (dislocation) कहते हैं। तब नींद की अवस्था में यह हिस्सा एकदूसरे व्यक्तित्व को जन्म देता है। वह सोई हुई हालत में मौजूद विचार के अनुसार चलता-फिरता है और कभी

लिखता है अथवा दूसरे काम भी करता है। इस हालत में दिमाग के बाकी हिस्सों का कोई असर या काम नहीं रहता। प्रसिद्ध फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक पियेरे जेनेट (Piere-Janet) ने सबसे पहले इस दोहरे व्यक्तित्व की व्याख्या की थी। इस तरह मस्तिष्क के हिस्सों के बीच सम्पर्क टूटने से अस्वाभाविक रूप से स्वप्न में चलने की बीमारी आम तौर पर वैसे ही लोगों को होती है, जिनके दिमाग में हिस्टीरिया की प्रवृति पहले से रहती है। अगर वे किसी प्रकार आतंकित हो उठें या उन पर किसी गहरे विचार का दबाव पड़े तो दिमाग में यह रोग घुसता है। विज्ञान की शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ रात की पुकार का अंध-विश्वास धीरे-धीरे दूर हो रहा है। फिर भी जो लोग अलौकिकता की हवा फैला कर अपने प्रभाव को कायम रखना चाहते हैं और पुराने खयालात को आज भी पकड़ कर रखना चाहते हैं उनके सामने इस सोमनाम्बुलिजम की व्याख्या को साफ-साफ रखने की जरूरत है।

दाँत का कीड़ा मंत्र सुनता है

सवित्र मोहन राय

बस के इन्तजार में खड़ा था। पास ही फुटपाथ पर एक जमघट पर मैंने पहले से ही ध्यान दे रखा था। एक-दो बातें कान में पड़ने से थोड़ा कौतूहल हुआ और मैं आगे बढ़ा। एक पतला दुबला वक्ता था। उसके सामने बिछी हुई पोलीथिन के चदरे पर कुछ पुराने दाँत बिखरे पड़े थे, पास में कुछ ताश रखे थे, एक-दो रंगीन अथवा सादा द्रव से भरे बोतल रखे थे, और कुछ ऐसी-वैसी चीजें थीं तथा कुछ दंत मंजन से भरी शीशियाँ थीं।

"है किसी भाई साहब को ? थोड़ी आवाज देकर आगे बढ़कर आइये। इसमें कोई पैसा नहीं लगेगा। चाहे जितना भी पुराना कीड़ा हो ...।" और उस 'दंत विशारद' वक्ता ने विस्मित श्रोताओं पर एक बार नजर फेरा। काफी सुपरिचित दृश्य है। इसी बीच बस आ गया। मैं चल पड़ा।... लेकिन मेरी आँखों में फुटपाथ के जमघट का दृश्य उसी प्रकार बना हुआ था। बचपन की वह बात याद आ रही थी। दाँतों में असहनीय दर्द था। पढ़ना-लिखना, स्कूल जाना तो क्या खाना-पीना तक बंद था। किसी एक आदमी ने आकर माँ से कहा, "बहू, हारान के बाप को बुलाओ न ! वह बहुत अच्छी तरह कीड़ा निकाल देता है। अभी आकर लड़के के दाँत का कीड़ा निकाल देगा। दर्द दूर हो जायेगा। उसी दिन तो ...।" हारान के बाप को बुलाया गया। हारान का बाप मुझसे मुंह खोलने के लिये कहा, कुछ मंत्र पढ़ा, और एक लकड़ी लेकर दर्द वाले दाँत में कुछ भोंका-भोंकी किया बस, क्या आश्चर्य की बात है — एक नहीं, दो-दो कीड़े निकल आये। वह उन कीड़ों को अपनी हथेली पर रखा। सबों के साथ मैंने भी झुककर देखा काले-काले दुश्मनों को। उसके बाद न जाने क्या सब जड़ी-बूटी घिस कर थोड़ा सा गाल के ऊपर लेप लगाकर माँ से कहा "माँ, यह कोई मामूली बात नहीं है। कीड़ा क्या, मानो बाघ के दो बच्चे हैं। अब कोई चिन्ता की बात नहीं है।" सचमुच दर्द थोड़ा कम हुआ था। और हारान का बाप अपनी दक्षिणा लेकर चला गया। उस दिन आश्चर्य, श्रद्धा और कृतज्ञता से मेरा मन भर गया था लेकिन ये भावनायें बहुत कम वक्त तक बनी रहीं। कुछ दिन दर्द रुका रहा, और फिर से वही दाँत दर्द करने लगा। उसे उखाड़ने के बाद ही उसका दर्द खत्म हुआ। लेकिन मेरे मन में यह विश्वास जम गया था कि जो छोटे - छोटे कीड़े हमलोगों के दाँतों में छेद करके उन छेदों में आराम से घर बना कर रहते हैं जिसके चलते भीषण दर्द होता रहता है। लेकिन एक विषय में बड़ा आश्चर्य होता था कि कीड़े कभी भी कीड़ा लगे दाँत के बाहर नहीं आते हैं, कभी भी मुंह के अन्दर उनको महसूस नहीं किया और किसी के महसूस करने की बात सुना भी नहीं। और खुद लकड़ी से कभी कीड़ों को निकाल नहीं पाया (हारान के बाप की तरह कीड़ा निकालने वाला मंत्र मैं जानता भी नहीं था)। बहुत समय बाद जाकर, कालेज में पढ़ने के वक्त, मेडिकल कालेज में मामला मेरे सामने स्पष्ट हुआ।

उस दिन जोरों से बारिश हो रही थी। कई लोग क्लास में गैर हाजिर थे। उस दिन फिर हिमांशु के दाँत में दर्द था। बेंच पर सिर रख कर बैठा था। शिक्षक ने क्लास में आते ही कहा "आज अब क्लास नही लूंगा। देख रहा हूं कि क्लास में खास छात्र भी नहीं हैं।" इस बीच हिमांशु पर उनकी नजर पड़ी। श्यामल ने कहा, "उसके दाँत में कीड़ा है सर। इसी से काफी दर्द हो रहा है। यह सुनकर शिक्षक आश्चर्य चकित हो गये। "कीड़ा क्या है रे? दाँत में कीड़ा भी लगता है क्या?"

ऐं, टीचर जी यह क्या बोल रहे हैं। 'दाँत में कीड़ा लगता है क्या!' इस सवाल को पूछने का मतलब? दाँत में कीड़ा तो लगता है इस बात को तो सभी जानते हैं और कई लोगों ने देखा भी है।

"गलत बात है, झूठ है। वह तो लोगों को ठगने की तरकीब है," एकदम से हमें अबाक करते हुए शिक्षक कहने लगे। "एक काम करो। कल आउट डोर में आओ। वहाँ निकाले गये कई सारे दाँत होंगे और उनमें तुमलोगों के वे 'कीड़े लगे' दाँत भी मिलेंगे। देखो और एक भी कीड़ा मिलता है कि नहीं जरा देखो। लेकिन पहले ही मैं कह देता हूं कि नहीं मिलेगा, क्योंकि जो नहीं है उसे पाओगे कहाँ से!"

"लेकिन सर यह जो छेद है—"

"कौन छेद करता है, यही न? यह सब छेद किसी कीड़ा का कारनामा नहीं है। एसिड, याने अम्ल, अम्ल से छेद होता है।"

हाँ, एकबात में कहा जाये तो इस छेद के लिए जिम्मेवार एकमात्र एसिड ही है।

हमलोग दिन भर कुछ न कुछ खाते रहते हैं और खाने के बाद बहुत कम बार ही हम अपने मुंह को भली भाँति धोते हैं। इसके फलस्वरूप अधिकांश मामलों में खाद्य पदार्थ का कुछ अंश दाँतों में इधर-उधर घुसा रह जाता है या अटका रह जाता है। और मुंह में अनगिनत किटाणु अथवा माइक्रो आर्गानिज्म (Micro-Organism) हैं। (इनको कीड़े भी कहा जा सकता है, लेकिन इनको बगैर अणुवीक्षण यंत्र के नंगी आंखों से देखा नहीं जा सकता है, लकड़ी से निकाल बाहर करने की बात तो दूर। दूसरी बात यह कि ये किटाणु सीधे जाकर दाँतों को नुकसान नहीं पहूंचाते, सो उस मतलब से भी दाँत में कीड़ा लगने वाली बात ठीक नहीं है।) इन किटाणुओं में कई (Lactobacillus acidophillurs अथवा Lactobacillus odoltolyticus, Lactobacillus Fermentic Aciduric Streptococci आदि) दाँतों के बीच अटके हुए खाद्य पदार्थों के शर्करा (Carbohydrates जैसे भात, रोटी, चीनी आदि) वाले अंश को तोड़ कर एसिड तैयार करते हैं। (मुख्यत:

Lactic Acid, और उसके अलावा Pyrulic Acid, Acetic acid Bntaric acid अदि। यही एसिड असल में दाँतों को नुकसान पहूंचाते हैं। साफ दाँतों के झलमल सफेद अंश याने एनामेल (Enamel) दाँत के अंदर के अपेक्षाकृत नरम अंश की बाहरी हमलों से बचाकर रखता हैं। यही एनामेल दाँत को हड्डी चबाकर तोड़ने की ताकत देता है। एसिड इस एनामेल को नष्ट कर देता है, तोड़ देता है, और चूर्ण कर देता है। और तब हमलोगों के चिर परिचित रोग 'दंतक्षय' (Dental caries) रोग का जन्म होता है। दंतक्षय के प्रथम चरण में खास कुछ पता नहीं चलता है, लेकिन बाद में इसी से दाँत के दर्दनाक छेद (Cavity) का जन्म होता है। अगर एनामेल के ऊपर गंदा पीला रंग या पर्दा (Dental Plaque) जमा रहे तो एसिड बनने में आसानी होती है और यह पर्दा एसिड को ब्लाटिंग-पेपर की तरह पकड़ कर रखाता है। इसके फलस्वरुप एसिड साफ दाँत की तुलना में गंदे दाँतों को काफी अधिक नुकसान पहूंचा सकता है। इसके अलावा खान-पान की आदतों पर भी दंतक्षय काफी कुछ निर्भर करता है। आधुनिक सभ्य देशों में जहाँ प्रोसेसड फुड (Processed food) रिफाइन्ड चीनी और चाकलेट जैसी चीजों को खाने का प्रचलन है वहाँ दंतक्षय अधिक होता है, क्योंकि इन वस्तुओं में दाँत में फंसे रहने की क्षमता अधिक रहती है। लेकिन आधुनिक सभ्यता से दूर रहने वाले एस्किमों अथवा आफ्रिका के कई आदिवासी जातियों में दंतक्षय की यह बीमारी करीब नहीं के बराबर होती है। उसका कारण उनके खान-पान की आदत ही है। दूसरे विश्वयुद्ध के समय यौरप के कई देशों में चीनी किस्म के खाद्य पदार्थों की आपूर्ति काफी कम हो गयी थी। सात-आठ साल बाद देखा गया कि इन सभी देशों में बच्चों को दंतक्षय की बीमारी पहले से काफी कम हो गयी लेकिन युद्ध के बाद चीनी जैसे पदार्थों की आपूर्ति बढ़ जाने से फिर से स्थिति पहले जैसी हो गई। इसीलिए अनेक रोगों की तरह दंतक्षय को भी 'सभ्यता की बीमारी' (Disease of the Civilisation) कहा जाता है। हाँ, पहले यह रोग नहीं होता था, ऐसी बात नहीं है। प्रागैतिहासिक युग में भी नियोलिथिक (Neolethic) युग के ब्राकाईसेफोलिक (Brachycephalic) मनुष्यों के (ई० पू० १२००-३०००) सिर की हड्डी की जाँच करने से इस बीमारी के रहने का सबूत मिला है। मिश्र की मम्मियों की परीक्षा करने से, उनमें भी दंतक्षय की बीमारी पायी गयी। आदिम मानवों में दंतक्षय की बीमारी कम होने का कारण यह था कि वे सख्त और कच्चा मांस चबाकर खाते थे, जिससे दाँतों की ऊंची-नीची स्थिति काफी कुछ बदल कर चिकनी और समान हो जाती थी, जिसके फलस्वरुप खाद्य पदार्थ विशेष कर फंसे नहीं रहते थे। इसके अलावा उनके भोजन में शक्कर की मात्रा भी तुलना में कम होती थी।

ऊपर की आलोचना में हमने देखा है कि मुंह के अन्दर के किटाणु दाँत में फंसे शक्कर पर क्रिया करके एसिड बनाते हैं। वही एसिड ऊपर जमे हुए पर्दा का आश्रय लेकर

एनामेल और दाँत को नुकसान पहूंचाते हैं। मुंह को किटाणुओं से मुक्त रखना तो मुश्किल है। बेहतर है कि चाकलेट जैसी खाने की चटपटी शर्करा जाति की चीजों को खाना कम करें और खाने - पीने के बाद दाँत-मुंह को अच्छी तरह साफ किया जाये तो 'दंतक्षय' को काफी कुछ रोका जा सकता है। अगर किटाणुओं को खाने को कुछ मिलेगा ही नहीं तो वे एसिड कैसे बनायेंगे ? दाँत माँजने के उपकरणों के रूप में टूथ ब्रश और टूथ पेस्ट सबसे अच्छा होता है। इससे दाँतों के ऊपर जमा पर्दा (Dental Plaque) दूर होगा और दाँत और मसूड़ों के दूसरे रोगों की संभावना भी कम हो जायेगी। चूंकि शिशुओं का दाँत माँजना संभव नहीं होता है इसलिए उन्हें सेव, संतरा अथवा मुसंबी के फल खाने के लिए दिया जाये जिससे अपने आप दाँत और मसूड़े साफ हो जायेंगे। फिर भी अगर दंतक्षय हो तो शुरू में ही पकड़ में आने से इसका भी अच्छा इलाज है। इसके लिए दाँत के डाक्टर के पास जाने की जरूरत है। हमलोगों के अन्दर एक और गलत धारणा है कि दूध के दाँतों के लिए कोई इलाज की जरूरत नहीं है क्योंकि आखिर दूध के दाँत तो गिर ही जायेंगे। यह बात ठीक नहीं है। सही समय के पहले ही अगर दूध के दाँत गिर जायें तो स्थाई दाँत और मसूड़ों के गठन में कमी रह जा सकती है। इसके अलावा यह भी देखना चाहिए कि बच्चों को उचित मात्रा में कैल्सियम और विटामिन मिल रहा है या नहीं। दाँतों को मजबूत करने के लिए इनकी विशेष जरूरत है।

दाँतों के क्षय को रोकने के लिए एक और काम करना चाहिए। यह मूलतः सरकार अथवा राज्य की जिम्मेवारी है। जिस प्रकार पीने के पानी में क्लोरिन मिलाया जाता है उसी तरह कुछ फ्लोरिन (Flourine पानी के १० लाख हिस्सों में १ या १·२ हिस्सा फ्लोरिन) मिलाकर सप्लाई करने से दाँतों का क्षय काफी कम होगा। कई विकसित देशों की तरह यह हमारे देश में भी आसानी से किया जा सकता है क्योंकि आर्थिक विश्लेषण से पता चला है कि दंतक्षय से होने वाली बीमारी के चलते जितने कार्य दिवसों (Working days) का नुकसान होता है और उसके इलाज में जितना पैसा खर्च होता है उसकी तुलना में पानी में सीधे फ्लोरिन मिलाने से काफी फायदा होगा।

कहावत है— "सुन्दर दाँत याने सुन्दर स्वास्थ्य" लेकिन दाँत को खतरा किससे है, असली शत्रु कौन है, यह सब न जानने से दाँतों को कैसे बचाया जा सकता है। समस्या के बारे में सही धारणा से ही समाधान के सही रास्ते का पता चलता है। लेकिन दाँत के सम्बन्ध में हमलोगों के अज्ञान ने कुछ ठगों की चतुराई के प्रभाव के चलते अंधविश्वासों को जन्म दिया है, और ठीक से जाँच करके न देखने की हमलोगों को जो दिमागी जड़ता है उसे टिका कर रखा भी हुआ है। अगर मैं जानता हूं कि दाँत के तमाम झमेले का कारण कीड़े ही हैं तो मैं कीड़ों से बचने की ही कोशिश करुंगा, किटाणु अथवा दाँत में फंसे

हुए शर्करा और एसिड से नहीं। इसका नतीजा यह होगा कि कीड़ा निकालने वाले ठगों के पास जाकर कुछ भेंट चढ़ायेंगे और असमय ही अपने दाँतों को खो जायेंगे। वास्तव में वही हो भी रहा है।

लेकिन एक सवाल तो रह ही गया। हारान के बाप ने दस आदमियों के सामने जो कीड़ा निकाला था आखिर वह कहाँ से आया ? या तो जादू से आया होगा या हाथ की सफाई से। पी० सी० सरकार जिंदा आदमी को दो टुकड़े कर के फिर से जोड़ देते हैं बेद-बेदनी लोग खाली मुट्ठी से ढेरों सारा सामान निकाल देते हैं, तो मामूली दो कीड़े क्या बात है !— यह तो साधारण हाथ की सफाई का काम है, पुराने चावल या गोबर से छोटे-छोटे कीड़े जमा करके हाथ में आगे छिपाकर रखना ऐसा कोई कठिन या असम्भव काम नहीं है। और चालाकी के लिए थोड़ा लवंग का तेल (Clove oil) दर्द करने वाले दाँत के मसूड़े में लगाने से तात्कालित रूप से दर्द को कम होना ही है।... जड़ी - बूटियों में कुछ दर्द दूर करने वाली दवाइयाँ तो हो ही सकती हैं, लेकिन उन्हें जाँचकर देखना होगा। नीम हकीमी तरीकों के इस्तेमाल से खतरा भी हो सकता है। इसके अलावा भी कई तरीके हैं। एक-एक कारीगर एक-एक तरीके से खेल दिखाता है। देखिये न, एक-दो तरकीब अगर आप जान लें तो और दस लोगों को बता कर आप खुद दाँतों की रक्षा में मदद कर सकते हैं।

कुम्हड़ा का बीज बना दाँत का कीड़ा

संकलन कर्ता

हाँ सचमुच। कुम्हड़ा के बीज से 'दाँत का कीड़ा' बनाया जा सकता है और धंधे के लिए बनाया जाता भी है। कुम्हड़ा के बीज के ऊपर के सख्त हिस्से को हटा देने से भीतर का जो नरम भाग रहता है उसे ब्लेड की मदद से अच्छी तरह पतला बना कर चीर लिया जाता है। उन पतले-पतले लम्बे टुकड़ों को धूप में सुखा लेने से मोटा - मोटी आधा काम पूरा हो गया समझिये। इसके बाद इन सूखे हुए टुकड़ों को दंत मंजन के साथ मिलाया जाता है (अधिकतर मीठे सफेद मंजन के साथ)। इस मिश्रण को एक शीशी में भर कर उस पर मोड़क आदि लगा कर दाँत का कीड़ा निकालने वाले ठग वैद्य लोग हाट-बाजार में या रास्ते के किनारे अपने साज-सामान के साथ बैठे रहते हैं। भाषण-बाजी से शुरू। उत्सुक श्रोता लोग भीड़ करते हैं। मौका देख कर वह धंधाबाज अंत में अपनी सबसे बढ़िया चाल चलता है। दाँत के दर्द से पीड़ित किसी व्यक्ति को पकड़कर उसके हाथ में कुम्हड़ा के बीज के टुकड़े मिला हुआ मंजन थोड़ा सा डाल कर कहेगा, "भाइयों, मेरा यह मंजन किस प्रकार दाँत के कीड़ों को छेद में से खींच कर बाहर ले आता है देखिये। बाबा, आप जरा अच्छी तरह दाँत माँज लीजिये तो! देखिये, बाबा का दस बरस पुराना कीड़ा कैसे बाहर निकल आता है।" सम्मोहित 'बाबा' अधिकाधिक उस मीठे चूर्ण से दाँत घसने लगता है। "हाँ, अब जरा थूकिये तो! हाँ यही तो! देखिये भाइयों, खुद अपनी आँखों से देखिये, बाबा के दाँत का कीड़ा किस तरह निकल आया है।" आश्चर्य से फटी आँखों से 'भाई लोग' दाँत के कीड़े को अपनी आँखों से देखकर दुर्लभ ज्ञान को हासिल करते हैं। सचमुच, सफेद-सफेद कीड़ों की तरह कुछ इधर-उधर घूम रहे हैं।

लेकिन लोगों की नजर हट कर जो बात हुई वह इस इस प्रकार है:

बाबा के इस जाली मंजन को मुंह में देते ही मंजन के अन्दर मिला हुआ सूखा कुम्हड़े के बीज के टुकड़े मुंह के अन्दर के गरम लार से थोड़ा-थोड़ा भींग कर फूलते जाते हैं। दस मिनट बाद जब 'बाबा' मुंह से थूक निकालते हैं तो थूक के साथ ही ये टुकड़े थूक के अन्दर हिलते-डुलते रहते हैं, बस जिंदे कीड़ों का एक दम जिंदा प्रदर्शन! जिन्होंने तब तक केवल दाँत के कीड़ों की बात सुनी ही थी, वे खुद अपनी आँखों से कीड़ों के दर्शन से लाभान्वित होते हैं। और जो दाँतों के दर्द से पीड़ित हैं वे लोग ऐसे धन्वन्तरी को साक्षात पाकर धन्य हो जाते हैं और बगैर किसी संदेह के 'जाली मंजन' की एक शीशी खरीदने के लिए होड़ लगाते हैं।

इसी तरह कुम्हड़ा के बीज की तरह छोटी-बड़ी हाथ-सफाई और जालसाजी की मदद से कितने सारे ठग पैदा होते हैं, बने रहते हैं और 'दाँत का कीड़ा' के विश्वास जैसी गलत जानकारियाँ बढ़ती जाती हैं।

साईबाबा, अलौकिकता और मैजिक

अनुवाद : अनुलेखा दास

१९७८ के १६ अप्रैल को साप्ताहिक पत्रिका 'संडे' में प्रकाशित जादूगर पी० सी० सरकार (जूनियर) की एक भेंट-वार्ता से काफी हलचल मची थी। 'गुरू-बाबाओं के अलौकिक कार्यकलाप मात्र हाथ की सफाई या मैजिक के अलावा और कुछ नहीं है' — नौजवान जादूगर प्रदीप सरकार ने बगैर किसी बहस की गुंजाइश के इस सच्चाई को प्रकट किया था। संवाददाता अजय कुमार और निर्मल मित्र के साथ उनकी भेंटवार्ता के उस हिस्से का हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है जो इस मामले को स्पष्ट कर देगा।

सवाल : आप तो मैजिक द्वारा कई आश्चर्यजनक घटनाओं की सृष्टि करते हैं, लेकिन 'मानव शरीर में ईश्वर' के नाम से प्रसिद्ध कुछ लोग, जैसे साईबाबा, ऐसी कई अलौकिक घटनाओं को घटा कर आम आदमी के लिए आश्चर्य और श्रद्धा के पात्र बनते हैं। क्या आप बता सकते हैं कि आपके और इन तथाकथित अवतारों की क्षमताओं में फर्क किस बात का है?

जवाब : साईबाबा एक ठग हैं। असलियत में वह तो एक मैजीशियन मात्र हैं, लेकिन वह अपना परिचय वैसा नहीं देते। उनका दावा है कि उनमें अलौकिक क्षमता है। मैं इस तरह के किसी भी "आदमी में भगवान" को चुनौती देता हूं कि मैं उनकी क्षमता की जाँच करना चाहता हूं। मेरे साथ मात्र एक मुलाकात इन तमाम ठगों की क्षमता की जाँच के लिए काफी है। साईबाबा धोखेबाज से भी बढ़कर हैं, वह इस विज्ञान और तर्क के युग में भी मनुष्यों की मानसिकता को अपने धन्धे में लगाते हैं। इस पृथ्वी पर सब कुछ विज्ञान और तर्क पर आधारित है। किसी घटना को किसी आश्चर्यजनक प्रक्रिया के माध्यम से तर्क से परे बताना — जबकि वह मात्र मैजिक की एक तरकीब के सिवा दूसरा कुछ नहीं है—एक घृणित काम है। यह मनुष्य के मस्तिष्क को नुकसान पहुंचाता है। अगर साईबाबा खुद को अलौकिक क्षमता सम्पन्न अतिमानव होने का दावा करता है तो उन्होंने आंध्रप्रदेश में तूफान के वक्त क्यों कुछ नहीं किया? प्रोफेसर नरसिंहैय्या के नेतृत्व में जो कमेटी साईबाबा की क्षमता की जाँच के लिए गठित की गयी थी, उसमें मैं भी था।

सवाल : क्या आप के साथ साईबाबा की कोई मुलाकात हुई थी ?

जवाब : हाँ, हुई थी। बड़ी मजेदार थी वह मुलाकात। पहले मैंने अपने पी० सी० सरकार (जूनियर) होने के परिचय के साथ उनके साथ भेंट करने की कोशिश की थी, लेकिन मुझे मुलाकात करने का मौका नहीं दिया गया। तब मैंने जहर (मेरा पुकार नाम) के नाम से एक लड़के के रूप में भेंट करने की कोशिश की और सफल हुआ। उनके सामने जाकर मैंने काफी श्रद्धा - भक्ति दिखाने का स्वाँग रचा, यहाँ तक कि मैंने उनके पैर छूकर प्रणाम भी किया। तब उन्होंने हवा में हाथ घुमाकर एक संदेश ले आया — जो मात्र एक हाथ की सफाई थी। संदेश पाकर मैंने भी हवा में हाथ घुमाकर एक रसगुल्ला ले आया। इसके लिए वह तैयार नहीं थे। इसलिए डर कर वह चिल्लाने लगे। मैंने शांतिपूर्वक उनसे कहा, "मैं पी० सी० सरकार, जूनियर हूं, आप भी मेरी ही तरह एक मैजीशियन हैं। फिर से हमारी मुलाकात होगी।" इन बातों को कहकर मैं कमरे से बाहर निकल आया।

साईबाबा की तस्वीर से राख या 'विभूति' झड़कर गिरने की घटना की असलियत को भी समझाया जा सकता है। यह एक वैज्ञानिक चाल के सिवा दूसरा कुछ नहीं है। अगर किसी फोटो के ऊपर कुछ लैक्टिक एसिड का चूर्ण रगड़ कर रखा जाये तो कुछ क्षणों के बाद वह फोटो तथाकथित विभूति से भर जायेगा। साईबाबा द्वारा नियुक्त बहुत सारे लोग सब जगह हैं, वे लोग इन फोटोओं को बाँटने के समय उसके ऊपर लैक्टिक एसिड के क्रिस्टल घसकर, उसके ऊपर सुगन्ध द्रव्य लगाकर देते हैं। इसके बाद के काम को तो लोगों के मन का सरल विश्वास खुद पूरा कर देता है।

सवाल : प्रसिद्ध जादूगर यूरी गेलार की क्षमता के बारे में आपकी राय क्या है ?

जवाब : वह एक सस्ते किस्म के मैजीशियन हैं। उसकी असफलता तो पूरी तरह जाहिर हो चुकी है। स्पेन के मैड्रिड शहर में मेरी उससे भेंट हुई थी। वहाँ उसका जादू काफी लोकप्रिय हो गया था। खासकर चम्मच को टेढ़ा करने वाला उनका एक खेल चर्चा का विषय बन गया था। नजर का धोखा ही इस रहस्य की मूल बात थी। मैंने उसके मैनेजर से भेंट की और टी० वी० पर उसके साथ मेरी भेंटवार्ता प्रसारित हुई। मैंने फिर से उसके टेढ़े चम्मच को सीधा कर दिया था। यह भी नजर का धोखा छोड़कर दूसरा कुछ न था। मेरे इस काम ने मैड्रिड में हलचल पैदा कर दी थी और गेलर का आकर्षण घट गया। गेलर लंदन मैजिक सर्किल के सदस्य थे लेकिन अब वह इस मंच से निष्कासित कर दिये गये हैं क्योंकि उनको दवा बेचते हुए देखा गया है।

सवाल : आपने किस प्रकार के मैजिक में सबसे अधिक पारदर्शिता हासिल की है

जवाब : नजर को धोखा देकर जो सब मैजिक दिखाये जाते हैं उनमें दर्शकों की खुशी के लिए उनकी नजरों में भ्रम पैदा करता हूं।

सवाल : आप बहुत सी चीजों को, यहाँ तक कि मनुष्यों को भी, गायब कर देते हैं। यह कैसे करते हैं ?

जवाब : विभिन्न रोशनियों और रंगों के समन्वय का इस्तेमाल स्टेज पर करके चीजों को प्रकट करने अथवा गायब करने की घटनाएं दिखाई जाती हैं। एक उदाहरण देता हूं। मान लीजिये, स्टेज के किसी कोने में लाल और नीला, दो रंगों की रोशनियाँ डाली गयीं। दोनों के मिश्रण से वह कोना हरा दिखाई देगा। अब अगर दूसरे कोने पर सीधे हरी रोशनी डाली जाये तो दर्शकों को, यह हरी रोशनी पहले की हरी रोशनी से काफी गहरी हरी लगेगी। और अगर कोई हरे कपड़े पहनकर उस गहरी हरी रोशनी में खड़ा हो तो वह दर्शकों की नजर में गायब रहेगा। इस प्रकार के दृष्टि भ्रम के द्वारा हम मंच से किसी को गायब कर देते हैं या अचानक किसी को प्रकट कर देते हैं।

सवाल : आपके पिताजी ने एक बार चीन में एक खेल दिखाया था। वह रेल लाइन पर लेट गये थे और एक रेल गाड़ी उनके ऊपर से चली गयी थी। यह कैसे सम्भव हो सका ?

जवाब : यह तो निश्चय ही नहीं हुआ होगा कि वह रेललाइन पर लेटे हों और सचमुच रेलगाड़ी उनके शरीर पर से चली गयी। यह १९३१-३२ की घटना है। उनके हाथ और पाँव जंजीरों से रेल लाइन से बाँध दिये गये थे। शंघाई एक्सप्रेस उसी लाइन से आ रही थी। तब शाम हो चली थी। झुटपुटे के कम प्रकाश में यह खेल दिखाया गया। अत्यन्त उत्कंठा के बीच हम में से एक आदमी रोने लगा था। पिताजी ने कहा था कि यह उनकी जिन्दगी का अंतिम प्रदर्शन हो सकता है। इससे वहाँ मौजूद तमाम लोग भीषण रूप से विचलित हो गये थे। एक कुशलता पूर्ण तरकीब की मदद से इस खेल को दिखाया गया था। जो आदमी बड़े जोर से रो रहा था (पिताजी पर गिर कर असल में वह रोने का स्वांग कर रहा था) उसने उसी मौके से पिताजी के हाथ में एक यन्त्र धरा दिया था। पिताजी ने उस यन्त्र की मदद से अपने हाथ - पाँव के बंधन खोल लिए थे और रेलगाड़ी के आते ही वह बगल हट गये। तरकीब बहुत आसान लगने पर भी इसमें बहुत अधिक खतरा था।

(मैंजीशियनों के तरह-तरह के कला - कौशल को देखकर कई बार आम आदमी के मन में ऐसी धारणा बन जाती है कि उनके अन्दर कोई दैवी शक्ति है। इस प्रकार की धारणा कई बार काफी नुकसान देह हो सकता है। भेंटवार्ता के समय पी० सी० सरकार (जूनियर) ने निर्मल मित्र को ऐसी एक घटना की जानकारी दी। इलाहाबाद में यह घटना घटी थी। एक सज्जन ने पी० सी० सरकार से अनुरोध किया कि वह उनके लड़के को चंगा कर दें। बच्चे को साँप ने डंसा था। उस सज्जन ने सरकार का मैजिक देख कर उन्हें किसी भी डाक्टर से अधिक काबिल मान लिया था। तब पी० सी० सरकार ने अवश्य उस लड़के को डाक्टर के पास भेज दिया, लेकिन काफी देरी हो चुकने के कारण बच्चा मर गया। इसी सिलसिले में उनसे प्रश्न किया गया--)

सवाल : क्या ऐसी घटना आपके लिए चिन्ता का कारण नहीं बनता ? क्या आप को ऐसा नहीं लगता कि आप का यह पेशा लोगों में अन्धविश्वास को और भी अधिक मजबूत करता है ?

जवाब : नहीं, मैंने मनुष्य के मन के एक अज्ञात पक्ष को जानने के लिए तथा सबों को इस बात की जानकारी देने के लिए कि आम आम आदमी मानसिक रूप से कितना कमजोर है, मैंने मैजिक के पेशे को अपनाया है। मेरा कोई ठकोसला नहीं है। मैं अपने को एक मैंजीशियन के रूप में ही प्रतिष्ठित करना चाहता हूं, और मैं नहीं चाहता कि लोग मुझसे किसी अतिमानवीय कार्यों की उम्मीद करें। सच बात तो यह कि, मैं हर प्रदर्शन के पहले दर्शकों के सामने इस बात की घोषणा करता हूं कि मेरे पास कोई दैवी शक्ति नहीं है। मैं जो कुछ करता हूं उस में कोई भी चीज विज्ञान से परे नहीं है। इस तरह मैं अन्धविश्वासों को बढ़ावा नहीं दे रहा हूं।

सवाल : क्या मैजिक मनुष्य को कुछ सिखाता है ?

जवाब : हाँ, शिक्षा मिलती है कि छोटी-सी चीज कितनी बड़ी हो सकती है। विज्ञान आज काफी आगे बढ़ गया है। उसने इन्सान को चाँद पर पहूंचा दिया है। लेकिन आज तक मनुष्य के मन में वैज्ञानिक नजरिया पैदा नहीं कर सका। आदमी की इसी कमजोरी का फायदा उठा कर कितने सारे मैंजीशियन आज स्टेज के बाहर अपने को अधि-भौतिक दैवी शक्तियों वाला बता कर प्रचार करते हैं। मैंजिक मनुष्य को उसकी इसी कमजोरी से अवगत कराता है।

सवाल : आप खुद 'जादूगर' के नाम से परिचित होना नहीं चाहते हैं क्योंकि आपके वक्तव्य में 'जादू' का मतलब कोई अधिभौतिक घटना घटाना अथवा शुन्य से किसी वस्तु की सृष्टि करना होता है। आप यह सब नहीं करते हैं, लेकिन इस तरह के किसी सक्षम मृत या जीवित, जादूगर को आप जानते हैं क्या ?

जवाब : नहीं, ऐसे किसी व्यक्ति को मैं नहीं जानता हूं, और न कभी ऐसे किसी के बारे में मैंने कभी सुना। क्या आप जानते हैं कि सर आर्थर कैनन डायल ने हौदिनि को (आधुनिक इन्दजाल की दुनिया में हौदिनि (Houdini) एक प्रसिद्ध नाम हैं) एक बड़ा मैंजिशियन बनाया है। लेकिन हौदिनि ने बार-बार कहा है, "लेकिन क्यों ? मैं तो एक अभिनेता मात्र हूं। मेरी कुछ दक्षता है और मैं उसी का इस्तेमाल करता हूं।" आप ध्यान देंगे कि पुराने जमाने में इन्द्रजालिक लोग आम आदमी के समक्ष 'जादूगर' कहकर जाने जाते थे और आज वे लोग या तो ठग बन गये हैं या बाबा।

(उस दिन की चर्चा में दो और व्यक्तियों ने भाग लिया था, वे हैं—एक फ्रांसीसी मैंजीशियन जिल पास्कल एनट्रेमेन्ट और उनकी दोस्त जेनी लूकास। इस विषय में सभी लोग सहमत थे कि मैंजीशियनों में यह समझ धीरे-धीरे जोर पकड़ती जा रही है कि मैंजिक कला का अपना दायरा साफ-साफ निर्दिष्ट होना जरूरी है। कुछ लोग असलियत में मैंजीशियन होने पर भी दैवी क्षमता वाले धर्मगुरू का रूप धारण करते हैं (जैसे साईबाबा) और कुछ मैंजीशियन ऐसा प्रचार करते हैं कि उनके पास दैवी शक्ति है (जैसे ऊरी गेलार)। इन सबका असली परिचय सामने आना चाहिए। लेकिन इस प्रकार के ठकोसले को खतम करने के लिए मैंजीशियनों की मंडली से गेलार को निकाल बाहर करना ही काफी है क्या ? मिस्टर एनट्रेमेनन्ट ने यह सवाल किया — इन सभी प्रतिष्ठित मैंजीशियनों की प्रचारित अलौकिकता की बात का खंडन किस प्रकार होगा ? आम आदमी के मन में किस तरह इस बात को बैठा दिया जा सकता है कि साईबाबा के तस्वीर से गिरने वाली 'विभूति' का रहस्य तस्वीर पर चालाकी से खास एसिड-चूर्ण घसना छोड़कर दूसरा कुछ नहीं है ? और साँप के डंसने या बिच्छ के डंक मारने पर डाक्टर के पास ले जाने के बदले मैंजीशियन के पास ले जाना या मद्रास के किसी 'बाबा' को केवल चिट्ठी लिखकर जता देने का अर्थ मौत को सुनिश्चित करना ही होगा। यह बात कैसे उन्हें समझाई जाये ?)

चारो तरफ धर्मगुरू लोगों की अत्यधिक वृद्धि से पी० सी० सरकार (जूनियर) और उनके साथी मैंजीशियन लोगों को खतरे का संकेत दिखाई पड़ रहा है। वे अपनी सामाजिक जिम्मेदारी के बारे में नये सिरे से सोच रहे हैं, जब भारत के 'बाबा' लोग और पश्चिमी देशों के "होलीमैन" लोग टी० वी० पर प्रकट होकर कह रहे हैं कि — मैं ही भगवान हूं और स्टूडियो के बाहर भीड़ उमड़ पड़ रहा है। पी० सी० सरकार (जूनियर) ने साफ-साफ कहा कि, "मैंजिक के कलाकारों की जिम्मेदारी है समाज के अन्धविश्वासों और बुरे संस्कारों के खिलाफ लड़ाई करना।"

आग पर कैसे चलते हैं

मणींद्र नारायण मजूमदार

रामायण की सीता ने अपने को निष्पाप प्रमाणित करने के लिए आग में प्रवेश किया था और बगैर वह जले-झुलसे आग से बाहर निकल कर आ सकी थी। ऐसा ही कहा जाता है। अलौकिकता के प्रति विश्वास की प्रवृत्ति वाला मनुष्य किसी अस्वाभाविक घटना के नायक में दैवशक्ति होने के दावे पर आसानी से विश्वास कर लेता है या मान लेता है। खास कर चौंकाने वाली खबरों को छापने वाली व्यवसायिक पत्रिकाओं के प्रचार के फलस्वरुप कुछ असाधारण किन्तु वास्तविक घटना को भी लोग बिना सोचे-समझे अलौकिक मान लेते हैं।

(सचित्र संवाद)। टोक्यो शहर के बाहर माउन्ट टाकाओ में एक बौद्ध मन्दिर के प्रांगण में जलते हुए कोयले की तहपर से होकर पूरी तरह खाली पाँव से अपने मस्तमें एक लड़का चला है और उसके पीछे बौद्ध सन्यासियों का एक दल भी चला। "शरीर से शैतान को भगाने' के अनुष्ठान के एक हिस्से के रूप में इस आग पर चलने का आयोजन इस हफ्ते के आरम्भ में किया गया। आग पर चलने वाले उन भक्तों ने कहा कि उनको दर्द का कोई आभास नहीं होता है और न ही पाँव जलते हैं क्योंकि वे भौतिक जगत की चिन्ता से मुक्त रहते हैं।

स्टेट्समैन, १३ मार्च, १९८०।

१९३५ में खुदाबख्श नामक एक भारतीय फकीर ने लंदन में हलचल पैदा की थी। बगैर पाँव जले वह जलते हुए कोयले पर से चलकर गया था। इससे आश्चर्य चकित अंग्रेज लोग इस भारतीय इंद्रजालिक की "दैवी शक्ति" से काफी प्रभावित हुए थे। अंग्रेज डाक्टरों ने खुदाबख्श के आग पर चलने के पहले इस बात की जाँच-पड़ताल की थी कि उसके पैरों के नीचे कोई रासाय-निक लेप लगा है या नहीं। जिस गरमी के पास फटकना तक मुश्किल है उस पाँच मीटर लंबाई और साढ़े तीन मीटर चौडाई में बिछे जलते हुए कोयले पर से होकर फकीर खुदा बख्श आराम से पैदल चला गया। और उसके पाँव जले भी नहीं। आग पर जाने के पहले फकीर स्थिरता पूर्वक खड़ा रहा, कुछ मंत्र पढ़ा, उसके कपाल की शिरायें उभर आयी थी और आँखों की पलकें झपक नहीं रहीं थी। उसके बाद धीरे से कदम बढ़ाते हुए वह आग पर इस पार से उस पार और उस पार से इस पार पैदल चला दर्शक गण साँस रोक कर इस रोमाचकारी घटना को देखते रहे डाक्टर ने भी जाँच करके देखा-न; पाँव जले नहीं ...सवाद इसी प्रकार का था।

इस तथाकथित अलौकिक घटना को भारतीयों के अलावा औरोंने भी देखाथा। १७ वीं शताब्दी के मध्य में रिचार्डसन नामक एक अंग्रेज ने इस प्रकार के लोभ हर्षक खेल को दिखाना शुरू किया था जिसे देखने के लिए दुनिया भर के लोग आने लगे थे। वह एक लाल गर्म लोहा को हाथ में लेकर शुरू करते। उसके बाद वह जलते हुए कोयले को खाते, फिर जलते हुए गंधक को जीभ पर रखते, जलकर पिघलते हुए अलकतरा को वह इस तरह खाते कि मुंह के अन्दर से आग की लपटे निकल आती थीं। उसके बाद वह जलते हुए

उस दिन माँ की पुजा थी।...उस सज्जन का शरीर पतला-दुबला और कमजोर था। सिर पर के बालों को उभार गया। धोती को घुटनों के ऊपर उठाकर कमर में खोंसा हुआ था। मन्डप पर छह फीट लम्बी वेदी पर लकड़ी का कोयला जल रहा था। वह आदमी उसके ऊपर पैदल चला था। मुंह से लगातार माँ-माँ कहते जा रहा था, बाँयें हाथ में रुद्राक्ष की माला थी और दाहिने हाथ में मुद्रा। हर एक बार इधर से उधर चलने के बाद ही माता की प्रतिमा के सामने रखे थाले में रखे "मन्त्रपूत" सफेद तरल पदार्थ में वह अपना पाँव डुबा लेता था। और जोरों की आवाज से करीब दस ढोल-करताल-और शंख बजते जाते थे। सारे लोग अवाक देखते।...

मध्य कलकत्ता के पुजा मन्डप पर प्रत्यक्ष दर्शी का विवरण, अक्टूबर, १९७८।

कोयले को जीभ पर रखकर उसके ऊपर कच्चे मांस को भूंजते। गले हुए काँच को पीता। काफी दिमाग लगाने पर भी यूरोप के पंडित और वैज्ञानिक लोग इस चकाचौंधवाले मैजिक की ठीक से व्याख्या नहीं कर पाये। जैसे १९७५ ई० में प्रसिद्ध फ्रांसीसी विज्ञान पत्रिका Journal des Savants ने इस मामले पर काफी अनुसंधान किया। शिक्षाविद् डडार्ट का विचार था कि धीरे-धीरे अभ्यास करने से अधिकाधिक गरमी सहने की क्षमता बढ़ती है और दीर्घकाल तक अभ्यास करने से प्रचन्ड गरमी भी आराम से बर्दाश्त की जा सकती है।

हू-हू कर आग जल रही थी।...सामने बैठकर एक पुरोहित स्तव पाठ कर रहा था। एक-एक कर लोग उस आग पर धीरे-धीरे चल कर जा रहे थे। साथ ही ढोल बज रहे थे। आग पार करके जब लोगों के पैर मिट्टी पर पड़ते थे तब ढोल का बजना रुक जाता था। स्तव पाठ बंद हो जाता। उसके बाद एक और आदमी आता। उसके बाद और लोग आते लेकिन किसी के भी पैर में एक साधारण फफोला भी नहीं होता। कपड़े में भी आग नहीं लगता। उनको घेरकर हजारों लोग आश्चर्य चकित होकर इस असाधारण दृश्य को देखते हैं।...भीड़ को सम्भालने के लिए काफी पुलिस आई हुई थी। लेकिन किसी के भी मुंह से आवाज नहीं आ रही थी। वे चुपचाप इस पवित्र अग्नि कुण्ड की ओर अपलक देख रहे थे। उज्जयनी जिले के ताजपुर ग्राम में हर साल इस आग पर चलने के अनुष्ठान को देखा जा सकता है।

पहले आनंदनाथ आये उसकी गोद में उसकी दस वर्षीय भांजी तेजू थी। लम्बे अरसे से तेजू एक घातक बीमारी से पीड़ित है। अब आई धनिया। ७५ वर्ष की वृद्धा। पिछले १४ साल से वह अपने बच्चों और पोतों-पोतियों की भलाई के लिए इस तरह आग पर चलती आ रही है। एक साल भी बीच में नहीं छोड़ी।... उसके बाद आई सुखमा बाग। २३-२४ साल की युवती। चोरी गई भैंस को पाने की आशा में सुखमा ने आग पार किया था।...

जो लोग ताजपुर की इस आग पर चलते हैं वे भैरव के उपासक हैं। गाँवके एक प्रमुख आदमी से पता चला कि जो लोग पर चलते हैं उनके मन पवित्र होने के कारण ही उनको कुछ नहीं होता। गाँव के लोगों ने मन पवित्र न रहने से होने वाले नुकसान को भी देखा है।...

युगान्तर, २ सितम्बर, १९८१।

इसमें कुछ तरकीब भी थी। जीभ पर आग पर मांस तलने के वक्त अंग्रेज इन्द्रजालिक चालाकी से माँस में कोयला के एक हिस्से को लपेट लिया था, और काँच खाने के समय जीभ पर लार (Saliva) काफी मात्रा में पैदा करके गरमी को घटाया था। आगुन द्वारा करामात दिखाने के मामलों के बारे में फिलहाल कुछ रहस्यों का उदघाटन हुआ है या अंदाज लगाया गया है, फिर भी लगता है कि पहले की तरह आज भी पूरा मामला स्पष्ट नहीं है। लेकिन एक बात निसंदेद कही जा सकती है कि इस मामले में प्राप्त जानकारियाँ इतनी अधिक हैं कि उनके आधार पर इस बात को पक्का साबित किया जा सकता है कि इस आग के मामले में किसी अलौकिक अथवा दैव शक्ति की कोई भुमिका तो जरूर नहीं है।

सचेत और शिक्षित लोगों को भी शंका इस बात की होती है कि आग को यह कौशल मैजिक है या करामात हो सकता है कि सारी बातों को पकड़ना मुश्किल है, लेकिन आग से शरीर पर कोई प्रतिक्रिया का न होना, पाँव का न जलना और फफोले न पड़ना —इसका रहस्य क्या है? वास्तव में मानसिक नियंत्रण अभ्यास और तरकीब, इन तीनों का जितनी अच्छी तरह इस्तेमाल किया जाये, अग्नि-परीक्षा में उतनी ही अधिक सफलता मिल सकती है। आधुनिक युग में पावलोव (Pavlov) वादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मस्तिष्क के खास प्रकार के गठन के फलस्वरूप मनुष्य शरीर पर असाधारण नियंत्रण कर सकता है। याने मस्तिष्क का जो स्नायु केन्द्र हमलोगों के शरीर की तमाम गतिविधियों पर नियंत्रण करता है उसके खास किसी हिस्से को पूरी तरह निष्क्रिय रखकर फफोले पड़ने और दर्द का आभास होने जैसी शारीरिक-मानसिक क्रियाओं पर रोक लगाया जा सकता। यह संभव है आत्म-सम्मोहित अवस्था में खुद पर निर्देश जारी करके (auto-suggestion

शरीर अथवा विशेष स्नायु तंत्र को निर्देश देना चाहिए याने जो स्नायु चमड़े को जलाते हैं अथवा फफोले पड़ाते हैं उनको मस्तिष्क द्वारा निर्देश देना कि तुमलोग निष्क्रिय हो जाओ। इससे जलना रुक जाता है। यह आत्म सम्मोहन (Self-hypnotism) बहुत कठिन प्रक्रिया है। लंबे अरसे तक निष्ठा के साथ कुछ पद्धतियों का अभ्यास करना जरूरी है। (मन्नत अथवा धार्मिक आचरणों के माध्यम से कई बार इनका पालन किया जाता है)। इसके अलावा मस्तिष्क के गठन में भी कुछ अनुकूलता जरूरी है। देखा गया है कि खास-खास व्यक्ति वंश-परम्परा अथवा परिवेश के प्रभाव में इस क्षमता को हासिल करते हैं। (जूलेवर्न के माईकेल स्ट्रेगफेर की आँखों में गरम लोहा लगने पर भी अंधा न होने की बात बचपन में पढ़ी थी, जो इस प्रसंग में याद पड़ता है।) बौद्ध हीनयानियों में तंत्र के प्रभाव से इस प्रकार के आत्म निर्देश को क्षमता हासिल की जाती थी। उसके बाद हिन्दू धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा के फलस्वरूप बौद्धों का प्रभाव काफी घट गया। इन्हीं के वंशजों या उनको शाखा-प्रशाखाओं के लोगों में ऐसी विचित्र क्षमता देखी जा सकती है।

देवता की कृपा पाने की आशा में दीर्घ कालीन अभ्यास अथवा अध्यवसाय द्वारा जो लोग स्नायुतंत्र और शरीर को सहजता से गर्मी के असर से मुक्त कर सकते हैं, आग पर चलने के समय (कट्टर विश्वास और भक्ति से दर्द सहने की क्षमता यूं ही काफी बढ़ जाती है) उनके कार्य स्वभावतः असाधारण और अलौकिक लग सकते हैं। बीच-बीच में जो लोग कोशिश करके असफल रहते हैं, पाँव बुरी तरह जल जाते हैं, उनमें आत्म सम्मोहन करने की क्षमता की कमी और मस्तिष्क के अनुकूल न होने की जानकारी लोगों को न रहे या वे जानना न चाहते हों, लेकिन उनके बारे में यही प्रचार किया जाता है कि उनमें सचाई नहीं हैं अथवा देवता उनसे नाखुश हैं।

हम मैजिक या हाथ की सफाई पर वापस आते हैं। आधुनिक युग में वैज्ञानिकों की जिन सभी अनुसंधानों ने आग का खेल दिखाने से सम्बन्धित तरकीबों पर काफी कुछ प्रकाश डाला था, उन गवेषणाओं के मूल में थे १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रख्यात रसायन शास्त्री सेमेन्टिनि (Professor Sementini, 1777-1846)। वह इटली के नेपुल्स विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर थे। सेमेन्टिनि की गवेषणा पर नजर डालने के पहले अग्नि - उत्सवों की व्यापकता और उसके सामाजिक अर्थ पर थोड़ा ध्यान दिया जाये।

अग्नि उत्सव

आग को लेकर धार्मिक अनुष्ठान करने या सामाजिक उत्सव मनाने का प्रचलन काफी पुराना है और यह दूर - दूर तक फैला हुआ है। आज भी दुनिया कई देशों में कई मानव समुदायों में, खासकर आदिवासियों में, आग के ऊपर चलना धार्मिक और सामाजिक समारोहों का एक अंग है।

यूनान, भारतवर्ष और चीन में पुराने जमाने से ही यह प्रचलन था। बंगला देश में चरक पूजा में आग में घुलटना या आग पार करना अभी कहीं-कहीं चालू है। इसमें आग के ऊपर चलने का ही प्रचलन अधिक है। वर्तमान युग में सिंहल में, यहाँ तक कि 'विकसित' जापान में भी इसका प्रचलन है। मलाया, फिजी, ताहिति, सोमाइटि, न्यूजीलैंड द्वीपपुंज, बुल्गेरिया और स्पेन में भी इसका प्रचलन है। १६ वीं शताब्दी और उसके पहले यूरोप महादेश के इंगलैंड, स्काटलैंड, हालैंड, स्वीडन, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में व्यापक रूप से अग्नि उत्सवों का प्रचलन था, जिसके कुछ विवरण फ्रेजर के 'गोल्डेन बो' नाम की किताब में देखा जा सकता है। होली के पहले हमलोगों के आग या बुढ़िया का घर जलाने जैसे समारोह कई रूपों में पूरी दुनिया में, यहाँ तक कि योरप में भी प्रचलित थे, और अभी भी कई जगह प्रचलित हैं। कृषि प्रधान समाज में इस प्रकार के उत्सवों का मूल उद्देश्य था अशुभ शक्तियों को (भूतप्रेत आदि) नाश करना या दूर करना। मनुष्य को जो कामना हो व्यक्ति, समुदाय और मवेशियों का मंगल और वृद्धि, ये सब अग्नि उत्सव के द्वारा जादू की तरह जुटाये जा सकते हैं, ऐसा विश्वास इन उत्सवों के मूल में था। आग द्वारा पाप को मिटाना, अशुभ शक्ति को खतम करना, जानवरों, मनुष्यों, घरों, खेतों आदि को पवित्र करना ही इसका प्रधान उद्देश्य बताया है कई पन्डितों ने। समय के साथ इन सब जादूई रस्मों (magical rites) के साथ धार्मिक विश्वास भी आकर जुड़ गये। भक्त लोग अथवा पुरोहित लोग व्यक्तिगत या सामाजिक हितों की सिद्धि के लिए आग के ऊपर चलते या प्रदक्षिणा करते। कहीं पर आग के लपटों को पार करना या जलते हुए अंगारों को सिर पर डाल कर स्नान करने की विधि भी है। फिजी और मारीशस द्वीपों में गर्म पत्थर पर स्नान करने की रीति है। निर्दोष और सत्यवादी साबित करने के लिए समाज किसी व्यक्ति को कभी अग्नि परीक्षा में खड़ा करता था। आज भी कहीं-कहीं यह सब होता रहता है। नहीं जलना निर्दोष और सत्यवादी होने के प्रमाण के रूप में माना जाता था।

बुल्गेरिया के बर्गर (Burgur) नामक बन्दरगाह से ३० किलोमीटर दूर पर पानितचारो (Panitcharewo) नामक गाँव का पुराना नेस्टीनारी सम्प्रदाय (Ancien Sect of Nestinari) हर साल ३ जून को बाईजानटाइन सम्राट कान्स्टेंटाइन और साम्राज्ञी हेलेना की याद में जो अग्नि उत्सव का पालन करता है उसे देखने के लिए काफी लोग जुटते हैं। गाँव के लोग काफी बड़ी आग जलाते हैं और लपटों के मिट जाने के बाद जलता हुआ लकड़ी कोयला दस मीटर लम्बा बिछा रहता है जिसके पास जाना भी मुश्किल होता है। इसके बाद ढोल और बाजों के ताल और लय में नाच शुरू होता है। राजा और रानी की दो मूर्तियों को हाथों में लेकर एक बालिग औरत आगे बढ़ती है। आँखों के सामने उन दोनों प्रतिमाओं को पकड़ कर वह भक्ति भाव से उनको देखती रहती है उसके बाद अचानक वह जोरों से नाचने लगती है और नाचते-नाचते आग पारकर जाती (यहाँ पावलोव वादी मनोवैज्ञानिक व्याख्या स्मरणीय है)। उसके बाद एक वयस्क किसान उसी तरह नाचते-नाचते आग पार कर जाता है। कहना जरूरी नहीं कि किसी के भी पाँव नहीं जलते हैं। बुलगेरिया के छात्र एक बार किसानों के इस खेल की नकल करने गये थे। उनके पाँव बुरी तरह जल गये थे। लेकिन पाँव ठीक हो जाने के बाद उन्होंने बार - बार कोशिश की और अंत में उन्होंने भी इसमें सफलता हासिल की। अभ्यास द्वारा चमड़े में गर्मी बर्दाश्त करने की क्षमता बढ़ती है। किसानों के कठोर पांवों से आग पर चलना अधिक आसान है। आग के ऊपर चल कर जाने से जलते हुए लकड़ी कोयले के साथ चमड़े का संसर्ग एक सेकण्ड के एक छोटे से हिस्से तक ही रहता है। इससे हिसाब करके देखने पर पता चलता है कि ८० डिग्री से ६० डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक गर्मी से चमड़े का संपर्क नहीं होता है। इसीलिए आग पर चलना संभव होता है। लेख के आरंभ में खुदाबख्श द्वारा आग पर चल पाने का कारण शायद अब कुछ समझा जा सकता है।

हमारे देश में राँची जिले में, बंगालियों को चरकपूजा की तरह, गर्मी के मौसम में आदिवासियों में मंडा परब का अनुष्ठान होता है। इस उत्सव में भोक्ता लोग (याने गाजन के सन्यासी लोग) एक आचार का पालन करते हैं, जिसे फूल कूदना कहते हैं, याने फूलों के ऊपर कूदना या चलना। महादेव के मंदिर के पास आठ-दस हाथ लम्बे, दो हाथ चौड़े और आधे हाथ गहरे गड्ढे में जलता हुआ लकड़ी कोयला भरा रहता है। पुरोहित उसके ऊपर मंत्र से पवित्र किये हुए पानी को छींट देता है। भोक्ता लोग तालाब में स्नान करके भींगे कपड़ों के साथ मिलकर धीरे-धीरे आग पर चल कर जाते हैं। एक के बाद एक करके तीन बार वे गड्ढे की लम्बाई में चलकर पार होते हैं। प्रख्यात नृतत्व शास्त्री निर्मल कुमार बसु ने खुद घड़ी हाथ में रख कर देखा है कि तीन बार में ८-६ सेकण्ड जलते हुए लकड़ी कोयले पर से चलने के बावजूद पाँवों में फफोले नहीं पड़ते। भोक्ताओं की परिचर्या करने वाली सोखाइन महिलाएं भी उनके बाद आग पर चलती हैं और उनको भी कुछ नहीं होता है। बालक भोक्ता को भी आग पर चलने के लिए मजबूर किया जाता है।

प्रोफेसर निर्मल बसु के एक सहयोगी ने आग पर दौड़ कर पार होने की कोशिश की थी, लेकिन उसके पाँवों में फफोले पड़ गये। लेकिन एक और सहयोगी भोक्ताओं की तरह स्नान करके उन्हीं की तरह चल पाया था और उसके पाँवों में फफोले नहीं पड़े थे। उनकी धारणा है कि जंगलों और पहाड़ों में चलते रहने के चलते भोक्ताओं के पैर काफी कठोर हो जाते हैं, उसके अलावा, धार्मिक आचरण के अंत में नहा कर खाली पाँव आने के चलते पाँवों में लगी हुई मिट्टी गर्मी को कुछ हद तक रोकती है। राँची शहर से दूर खूंटी सबडिविजन के अन्तर्गत एक गाँव में भोक्ता लोग आग पर चल कर ही चुप नहीं रहते, बल्कि वे आग के बुझने तक उस पर नाचते रहते हैं। फूल कूदना का अनुष्ठान रात नौ-दस बजे शुरू होता है और देर रात तक चलता रहता है। आदिवासियों की धारणा है कि मंडा परब के समय पार्वती देवी आग के ऊपर अपने आँचल को बिछा देती है, और इसीलिए उनके पैरों में फफोले नहीं पड़ते।

रासायनिक तरकीब और आग पर चलने की करामात

भारतीय पुराण ग्रन्थ में ताप निरोधक अथवा जलने से बचाने वाले द्रव्य का उल्लेख है, जो मजेदार है। गरुड़ पुराण के पहले खंड के ११६ वें श्लोक में कहा गया है :

मालूरसत् रसंगृह्य जलौकां तत्र पेषयत्
हस्तौ संलेपयेत् तेन अग्नि स्तंभनमुत्तमम्।

याने बेल के पेड़ की जड़ और पत्ते के रस के साथ जोंक (वर्षा में जिस कीड़े की वृद्धि होती है) को पीस कर तरल करके हाथों और पाँवों में लगाने से आग की गर्मी नहीं लगेगी। इसी तरह १३वें श्लोक में कहा गया कि सेमल के जड़ की रस के साथ गधे के पेशाब को मिलाकर शरीर पर लगाने से आग की गर्मी नहीं लगती।

आयुर्वेद में जो विभिन्न गुणोंवाले पेड़ों और झाड़ियों का वर्णन है उनमें आगसे बचाने वाले पौधों का भी जिक्र है। उसका नाम है घृत कुमारी अथवा तरुणी। घृत कुमारी के लंबे - लंबे डंटलों के अन्दर का लसलसा रस (जिसमें aloin, crysophanic acid, uronic acid, resin आदि हैं) को हाथ में लगाकर जलते हुए कोयले को मुट्ठी में पकड़ा जा सकता है, जलने या फफोले पड़ने का डर नहीं रहता। किसी भी कविराज के दुकान में घृत कुमारी का रस खरीदा जा सकता है। इसके अलावा भी कुछ टोटके हैं — कलमीशाक (एक तरह का साग) और तालाब के पाना को मिलाकर पीस कर लगाने से गर्मी नहीं लगती है।

कई लोगों की धारणा है कि नौसादर (एमोनियम क्लोराइड) के पानी में हाथ या पाँव डुबाने से गर्मी से बचा जा सकता है। आदिबासियों का आग पर चलना, और खुदाबख्श का आग पर चलना रहस्यमय न रहने पर भी अंग्रेज रिचार्डसन के खेल में सारी बातें स्पष्ट नहीं हैं। आयुर्वेद का ज्ञान इन बातों को स्पष्ट करने में मदद कर सकता है। इस मामले में काफी रोशनी डाला है रसायन शास्त्री सेमेन्टिनि ने पिछले दशक के आरम्भ में नेपुल्स शहर के लायोनेट्टी (Lionetti) नामक एक आदमी के खेल को देखकर सेमेन्टिनि को गवेषणा की प्रेरणा मिली। उस समय नेपल्स में लायोनेट्टी के खेल ने हंगामा खड़ा कर रखा था। खेल के आरम्भ में लायोनेट्टी हथेलियों और पैरों के तलवों पर लाल-लाल लोहा के छड़ सटाता। लेकिन जलता नहीं था। पिघले हुए शीशे में उंगली को डुबा कर एक-एक बून्द जीभ पर डालता था, आराम से। जलते हुए तेल की आग के सामने मुंह को रखता लेकिन उसे कुछ नहीं होता था। उसके बाद उस जलते हुए तेल को वह पीता था।

सेमेन्टिनि ने भलीभांति यह सब देखा। उन्होंने देखा कि (आम आदमी जिसपर ध्यान नहीं देता) जब भी लायोनेट्टी गरम लोहे के छड़ को हथेली, पाँव के तलवों या बालों में लगाता था तभी एक बार वहाँ से धुआँ निकलता था। उसे यह भी लगा कि लायोनेट्टी की जीभ साफ नहीं है। लगता था कि उस पर कुछ लगाया गया है। उन्होंने यह भी ध्यान दिया कि लायोनेट्टी कभी भी कुछ बून्दों से अधिक तेल पीता नहीं था। तरल शीशा के साथ भी वही बात थी। सेमेम्टिनि को लगा कि हाथ की सफाई और दीर्घ कालीन अभ्यास के अलावा इसमें और भी कुछ अज्ञात बातें हैं। लेकिन वे अज्ञात बातें क्या हैं?

काफी जाँच पड़ताल के बाद वह रहस्य का पता लगाने में सफल हो सके। उन्होने फिटकिरी के घोल में हाथ धोया और उसके बाद साबुन लगाकर साफ कपड़े से हाथ को पोछ लिया। उसके बाद उन्होंने लाल गर्म कोयले को हाथ में पकड़ा। आश्चर्य! उनको गर्मी का कोई अनुभव नहीं हुआ। इसी तरीके से वह जीभ पर भी गर्मी से बच सके। हाथ और जीभ की और भी सुरक्षा के लिए सेमेन्टिनि ने फिटकिरी के घोल के बाद चीनी का पाउडर लगाया और उसके बाद साबुन लगाया। उसके बाद वह भी तरल सीसे मे (३२७ डिग्री सेन्टीग्रड) उंगली डुबाकर जीभ पर बून्द-बून्द करके डाल कर खेल दिखा सके उसके बाद सेमेन्टिनि ने गरम तेल पीने की जाँच शुरू की। उन्होंने उबलता हुआ तेल डाल कर शीशा को गलाया और उसके बाद उस तेल को थोड़ा-सा कप में ढाल कर पिया भी। शीशा गलाने में गरम तेल की गर्मी काफी घट गयी थी। याने जब जादूगर लायोनेट्टी उसे (प्रदर्शन के समय) पीते, तब वह गरम सिरुआ से अधिक गर्म नहीं रहता था। अवश्य ही इन सब खेलों को दिखाने में जादूगरों की जो जानकारी और बुद्धि का परिचय मिलता है वह जरूर ही प्रशंसनीय है। नेपल्स विश्व विद्यालय के भाषण कक्ष में एक दिन रसायन शास्त्री प्रोफेसर के आमंत्रण पर शहर के विशिष्ट व्यक्ति जमा हुए। वहाँ सबों के सामने उन्होंने पिघले हुए सीसे में उंगली डुबाना, गरम छड़ को छूना, जलते हुए तेल को पीना, आदि सारे खेल दिखाये। जो भी घटना घटती है वह प्राकृतिक और वैज्ञानिक नियमों के अनुसार ही घटती है, यह बात फिर से प्रमाणित हुई।

—✱✱—

विशेष द्रष्टव्य— लेख में दिये गये वैज्ञानिक तथ्यों की जांच लेखक ने नहीं की। वह मुख्यत: संकलन कर्त्ता हैं।

स्रोत : 1) From the History of Human Folly : Istvan Rath, Vegh Corvina Press (Budapest, 1963)
2) The Golden Bough : A study in Magic and Religion; J. G. Frazer : Abridged Edition, Macmillon & Co. Ltd. 1954
3) हिन्दू समाज का गठन : निर्मल कुमार बसु : विश्व भारती ग्रन्थालय, १३५६
4) Encyclopaedia Britannica, 15th Ed. 1975, Micropaehli Vol. IV
5) आयुर्वेदाचार्य श्री कृष्ण चैतन्य ठाकुर के साथ व्यक्तिगत बातचीत।

आग वाले सन्यासी का गुप्त मंत्र

मणींद्र नारायण मजूमदार

जलती हुई आग पर चलने के लिए खास किसी तरकीब अथवा रसायन के इस्तेमाल की जरूरत नहीं है। प्रशांत महा सागर के किसी-किसी द्वीप में, खास कर फिजी में काफी गर्म पत्थर के ऊपर चलने का धार्मिक रिवाज है। वह तो लकड़ी के कोयले की आग पर चलने से भी कठिन है।

आग पर चलना मूलतः एक कठिन खेल है—जिमनास्टिक। इसमें हिम्मत और मजबूती से जल्दी कदम रखना ही असली कला है। डरे बिना अगर कोई व्यक्ति किसी चीज पर ध्यान लगा सके तो उसके बगैर फफोला पड़े आग पर चलने में सफलता की संभावना अधिक रहती है। अगर पाँव कम नरम हो तो आसान होगा। चलने वाले का वजन कम हो तो और भी आसान होगा। भारतीय साधू लोग आम तौर पर दुबले पतले होने के चलते इस खेल को अधिक अच्छा दिखा सकते हैं। कोई-कोई गाँजा पीकर हिम्मत और मानसिक स्थिरता हासिल कर लेते हैं। जो लोग शराब पीकर जाते हैं उनके पैर डगमगाते हैं और वे विफल रहते हैं।

१९३५ ई० में इंगलैंड के यूनिवर्सिटी आफ लंडन कांउसिल फार साइकिकल इन्वेस्टिगेशन्स (University of London Council for Psychical Investigations) (११२ पेज सं० में वर्णित) खुदा बख्श के आग पर चलने की व्यवस्था करते हैं। १९३७ ई० में इस संस्था ने कानपुर से गये हुए अहमद हुसेन द्वारा आग पर चलने की जाँच पड़ताल की। एक वैज्ञानिक संस्था और विश्वविद्यालय के कुछ डाक्टर और भौतिक शास्त्री मिलकर साज-सामान की मदद से आग पर चलने वाले मामले की वैज्ञानिक ढंग से छान-बीन की। खुदाबख्श जिस आग पर चल कर गया था उसके ऊपरी भाग में तापमान ४३० डिग्री से० था और भीतर १४०० डिग्री से०। अहमद हुसेन जिस आग पर चला उसकी ऊपर सतह का तापमान ७४० डिग्री से० था। ६ कदम चलकर अहमद हुसेन ने २० फीट आग पार किया था। जाहिर है कि हुसेन का काम खुदाबख्श से अधिक कठिन था। इनके पहले और बाद में कई अंग्रेज भी आग पर चले थे। किसी-किसी के पैर थोड़ा जलने पर भी काफी सफलता हासिल की थी। मि० एडकॉक नामक एक अंग्रेज ने चार कदमों में हुसेन के २० फीट को पार कर लिया था। पैर थोड़ा सा जलने पर भी, उसकी सफलता खुदाबख्श से बढ़कर थी।

खुदाबख्श १९३५ ई० के ९ और १७ सितम्बर को आग पर चला था। ७ टन ओक की लकड़ी, १ टन जलावन की लकड़ी, १० गैलन पैराफिन और ५० अखबार को मिलाकर आग जलाई गयी थी। आग पर चलने के पहले खुदाबख्श के पैरों की जाँच करके वैज्ञानिक लोग सुनिश्चित हो गये कि उनमें कोई लेप लगा नहीं है। आग पर चलने के पहले वह खाली पाँव घास पर चल रहा था। २० मिनट पहले पैर धोकर, पोंछकर पैरों को पूरी तरह सुखा लिया था खुदाबख्श ने। तब उसके पैर का तापमान ९३·२ डिग्री फा० था। आग पर चलना खतम करने के १० सेकण्ड बाद उसके पैरों का तापमान ९३ डिग्री फा० था। १२ फीट लंबे, ६ फीट चौड़े और ८ इन्च गहरे आग पर तेजी से चार कदम वह ५ सेकंड में पार हो गया था। हिसाब करके देखा गया कि खुदाबख्श के पैरों का संसर्ग आग के साथ करीब आधा सेकण्ड रहा। इससे तापमान इतना अधिक नहीं हो सका कि फफोले पड़ें। १५ डिग्री फा० से लेकर २० डिग्री फा० से अधिक तापमान बढ़ा नहीं। थोड़ा गरम पानी में से चलने से अधिक मुश्किल नहीं था यह। (इसका मतलब यह नहीं कि खुदाबख्श या इस तरह के लोगों के साहस, दृढ़ता, तेजी आदि गुणों को कम करके आँका जाये।) पैरों से अधिक संवेदन शील तामा-यूरे के एक "थार्मोकापल" नामक यंत्र को खुदाबख्श के चलने के ढंग से आग पर से ले जाकर भौतिक शास्त्री लोग उपरोक्त निर्णय पर पहूंचे। हमलोगों के देश में बहुत से लोग जलते हुए लकड़ी - कोयले को दो उंगलियों से पकड़कर चट से चूल्हे से बाहर निकाल लेते हैं। आग पर चलने का मामला भी करीब इसी प्रकार का है।

पिघले हुए सीसे को हाथ में रखने से संभवतः पानी के भाप का एक तह बनकर चमड़े की रक्षा करता है। यह सिद्धांत आग पर चलने के वक्त लागू नहीं होता है। बल्कि जिसके पैर भींगे रहते हैं या जिसे अधिक पसीना निकलता है उसके पाँवों में जलते हुए अंगारों के टुकड़े सट कर पैरों को जला सकते हैं। खुदाबख्श के पैर के एक नाखून पर आधा वर्ग इन्च स्थान पर एक "ल्यूकोप्लास्टर किस्म का" (Zinc Oxide प्लास्टर) लगा था, वह भी यथावत् बना रहा। इन सभी तथ्यों से लगता है कि आग पर खेल दिखाने के लिए उनको ठंडा कोयला बिछाकर पहले उसके ऊपर चलने का अच्छी तरह अभ्यास करना चाहिए। आग के साथ संपर्क का समय ही असली बात है। फिजी द्वीप में गरम पत्थर पर चलने के मामले में संभवतः एड़ी और उंगलियों को टिकाकर चलने के कौशल का इस्तेमाल फिजी वासी करते होंगे।

अब ब्राउन साहब की जाँच और पर्यवेक्षण की रिपोर्ट के कुछ खास अंशों को यहाँ पेश करके इस चर्चा की समाप्ति करता हूं:—

१) आग पर चलने में कोई धोखाधड़ी नहीं होती। किसी भी प्रकार के रसायन का इस्तेमाल किये बगैर खाली पैरों से सामान्य ढंग से आग पर चला जाता है।

२) जल्दी से और मजबूती के साथ कदम बढ़ाते हुए इस प्रकार जाना चाहिये कि एक पैर पर अधिक वजन न पड़े और आग के साथ संसर्ग बहुत कम समय के लिए ही हो।

३) पैर सूखे रहें। पैर भींगे रहने से जलते हुए कोयले के टुकड़े पैर में सटकर फफोले पड़ सकते हैं।

४) पैर और जलते हुए कोयले के बीच "अर्द्ध गोलाकार स्थिति" (Spheroidal State) याने ताप प्रतिरोधी भाप की तह न बन पाये।

५) पैरों में कोई अस्वाभाविक कड़ा पड़ा हालत जरूरी नहीं है, इससे कोई अधिक सुविधा नहीं होती।

६) उपवास या दूसरी कोई तैयारी जरूरी नहीं है।

७) (मंत्र अथवा कोई कौशल से) शिष्य, भक्त या अन्य किसी व्यक्ति को आग से बचाया नहीं जा सकता।

तथ्यों के स्रोत :—

1) Nature : 21 Sept. (P 468) and 28 Sept. (P 521) 1935

2) D. H. Rawcliffe : Illusions and Delusions of the Supernatural and the occult : Dover, 1959.

3) G. B. Brown : Three experimental Fire Walks : University of London Council for Psychical Research, Bulletin IV, 1938.

मनुष्य आग पर कैसे चलता है

शंकर राव

नंगे पैरों से जलती हुई आग के ऊपर से होकर फटाफट कई लोग चलते हैं और आश्चर्य चकित दर्शकों के सामने पूरी तरह चंगे, बगैर जले, अग्निकुन्ड को पार कर चले आते हैं। स्वभावत: लोगों में ऐसी ही एक धारणा व्यापक है कि यह इन्टनकारी के धार्मिक विश्वास के चलते हो संभव हुआ है। कई लोग इसे एक जादू या अधिभौतिक घटना मानते हैं। भारत के विभिन्न इलाकों में श्रीलंका और दक्षिण पूर्व एशिया के दूसरे देशों में एक काफी प्रचलित घटना है।

इस आग पर चलने की घटना की व्याख्या के मामले में श्रीलंका के कोलंबो मेडिकल कालेज के शरीर विज्ञान विभाग के डाक्टर कार्लो फनसेका ने काफी कुछ उल्लेखनीय काम किया है। डाक्टर कार्लो की तरह इस धार्मिक परम्परा के आग पर चलने वाले अनुष्टान में पैर न जलने का कारण यह है कि आग के साथ पैरों का संपर्क बहुत कम समय के लिए रहता है और इसके लिए पैर भींगे, ठंडे और गंदे रहते हैं। उनकी अनुसंधान शाला में इसकी जाँच की गयी। उन्होंने विभिन्न स्थानों में इस्तेमाल में लाये जाने वाले अग्निकुन्ड के अनुरुप आयतन के लाल जलते हुए कोयले के कुन्ड तैयार किये। प्रमुख धार्मिक व्यक्तियों, वैज्ञानिकों और जन नेताओं को आमंत्रित किया गया और सबों की मौजूदगी में पाँच स्वस्थ पुरुष निडरता से आग पार हो गये। दर्शकों को आगे आकर उनके कथन में सचाई की जाँच करने का अनुरोध किया गया।

डाक्टर फनसेका ने श्रीलंका में इस प्रकार के आग पर चलने की कई घटनाओं का निरीक्षण करके अग्निकुन्ड का नाप और तापमान, हर व्यक्ति को आग पार करने में कितना समय लगता है, पैर आग के संपर्क में कितनी बार आया, कितने कदमों में आगपार कर सका, आदि के आँकड़े इकट्ठे किये और उनका विश्लेषण किया। इन सब से, इन लाल गरम अंगारों के साथ आग पर चलने वाले का हर बार संपर्क का असली समय कितना लगा, इसका हिसाब लगाया गया। सबसे तेज आदमी के मामले में ०.२ सेकन्ड से लेकर सबसे धीरे चलने वाले के मामले में ०.६ सेकन्ड के बीच संपर्क का समय पड़ता है। औसत समय ०.३ सेकन्ड।

आम तौर पर चमड़े के ऊपरी सतह का तापमान अन्दर की पेशियों के तापमान की तुलना में कम रहता है। जब चमड़े में कोई गरम चीज काफी देर पकड़ कर प्रयोग किया जाता है तब चमड़े का तापमान बढ़ता जाता है। गरमी अन्दर की गहरी पेशी में चली जाती है और उसका तापमान बढ़ जाता है। जब करीब ५० डिग्री से० के खास

(critical) स्तर पर तापमान पहुंच जाता है तभी जलने की घटना घटती है। फफोले आदि तब प्रकट होते हैं जब गहराई में मौजूद पेशियों से प्लाजमा धीरे - धीरे चू कर जलने वाले चमड़े के नीचे आकर जमा हो जाता है। गरम भाप, उबलता हुआ तरल पदार्थ अथवा गरम धातु के साथ संपर्क होने से जलने की यह प्रक्रिया होती है।

इन सब मामलों में शरीर के मौलिक नियम हैं—जलाने वाली वस्तु द्वारा (यहाँ आग) शरीर पर असर के लिए एक निर्दिष्ट न्यूनतम समय तक सपर्क जरूरी है, उससे कम समय में आग चाहे जितनी तेज हो, किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया पैदा नहीं कर सकती। धार्मिक प्रथा के अनुसार आग पर चलने के मामले में हो सकने वाली प्रतिक्रिया, याने गहराई में स्थित पेशी का तापमान के बढ़ने और जल जाने की घटना कभी नहीं घटती क्योंकि आग के साथ संपर्क का समय प्रतिक्रिया के लिए जरूरी विशेष (critical) समय से कम रहता है।

ग्रामीणों में इसका एक व्यवहारिक प्रयोग देखा जाता है। वे नंगे हाथ से कई बार लाल जलती हुई लकड़ी को उठाकर बीड़ी, हुक्का आदि से लगाते हैं। ध्यान दिया गया है कि ग्रामीण लोग लगातार अंगार को हाथ में पकड़ कर नहीं रखते हैं। बल्कि हाथ पर अंगार को हिलाते रहते हैं ताकि हाथ के चमड़े के साथ उसका संसर्ग कभी भी ०.३ से० से अधिक देरी तक न हो और कोई दर्द अथवा फफोले नहीं होते। इसी तरह गर्म धातु के एक टुकड़े को इस तरह आसानी से उठा लिया जा सकता है। लेकिन अगर कोई उसी ताप मान वाले किसी तरल पदार्थ में उंगली डुबाये तो चमड़ा बे असर नहीं रहेगा, क्योंकि इस मामले में उंगली का एक बड़ा हिस्सा संपर्क में आता है और तरल पदार्थ उंगली पर लगा रह जाता है तथा और भी लंबे समय तक उंगली को गर्म रखता है।

आग पर चलने में निपुण अधिकांश लोग नंगे पैर चलने के अभ्यस्त लोग हैं, इसी लिए उनके पैर के तलवे का चमड़ा मोटा और कड़ा होता है। इसके अलावा अनुष्ठान शुरू होने के ठीक पहले वे नदी या तालाब में नहा कर भींगा कपड़ा पहने, नंगे पैर अग्निकुन्ड में आते हैं, ये सारी बातें आग पर चलने के वक्त शरीर को नुकसान से बचाने में काफी मदद करती हैं। पाँव के नीचे कीचड़ लगाने से वह आग लगने में एक और बाधा का काम करता है और ठीक जिस तरह चूल्हे पर से गर्म बर्तन को उतारने के लिए हाथ में कपड़ा रखते हैं, जिससे कपड़ा शरीर और बर्तन के बीच गर्मी के संसर्ग में बाधा का काम करता है।

अधिकांश आग पर चलने वाले लोग उम्रदार लोग होते हैं, छोटे लड़के इसमें कम दिखाई देते हैं। बच्चों का चमड़ा कोमल होता है और बड़ों की तुलना में उनमें गर्मी सहने की क्षमता भी कम रहती है। लेकिन कई मामलों में बच्चों की यह कमजोरी अन्य

तरीकों से पूरी हो जाती है। वे काफी तेजी से चलते हैं, जिससे पाँव के तलवे का चमड़ा और भी कम समय आग के संसर्ग में रहता है।

'आग खाना' इसी प्रकार की एक अन्य घटना है। इस मामले में एक तार से झुलाये गये जलते हुए गोले को थोड़े से समय के लिए मुंह में घुसाया जाता है, जिससे मुंह को कोई नुकसान नहीं होता। क्या यह संभव है? आग खाने की घटना पर खास वैज्ञानिक छान-बीन नहीं हुई है लेकिन इतना समझा जा सकता है कि तीन चीजें टिस्यू को जलने से बचाती हैं। एक, लार हर समय मुंह में रहता है और मुंह के म्यूकस मेम्ब्रेन को बचाने में मदद करता है। इसके अलावा साँस के साथ बाहर आने वाला कार्बन डाई आक्साइड लपटों को बुझाने में या कम से कम घटाने में मदद करता है। तीसरी बात, इन लोगों के मुंह के अन्दर का हिस्सा बार-बार गर्मी बर्दाश्त करने के चलते कठोर हो जाता है।

यहाँ बाइबिल में वर्णित उस ईमानदारी की जाँच वाली घटना का ख्याल हो आता है, जहाँ जाँच किये जाने वाले व्यक्ति को लाल गरम तलवार से जीभ को दाग कर शपथ लेना होता था। इस अग्नि परीक्षा के पीछे तर्क यह था कि डर से झूठ बोलने वाले मुंह सूख जायेगा और गर्म धातु के सीधे संपर्क में आने से उसकी जीभ जल जायेगी। लेकिन सच्चा जो होगा, उसकी जीभ लार से भींगी रहेगी और उसे बचायेगी।

आशा की जाये कि इसके बाद पाठक गण इस प्रकार के किसी अनुष्ठान को देखने पर उसमें भाग लेने में हिचकेंगे नहीं। अगर वे धार्मिक रीतियों का पूरी तरह पालन करें, आग पर चलने की जगह पर भींगे हुए कपड़े पहन कर आवें, और पाँव में यथा सभव कीचड़ लगा लें, तो वे और भी अधिक खतरे से बाहर रहेंगे।

Science Today November 81 से संकलित।

(डा० राव हैदराबाद गाँधी मेडिकल कॉलेज के शरीर विज्ञान के भूतपूर्व प्रोफेसर हैं।)

अलौकिकता बनाम पॉल कुरतज

सिद्धार्थ घोष

नियागरा जल प्रपात के तट पर हजारों लोग जमा हुए। संयुक्त राज्य अमेरीका के विभिन्न अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं की ओर से असंख्य संवाददाता वहाँ पहुंचे। अमरीकी सेना के इन्जिनियरिंग विभाग को सतर्क कर दिया गया। नियागरा जल प्रपात से सटे हुए संयुक्त राज्य अमेरीका और कनाडा के दो शहरों के मेयरों को सतर्क कर दिया गया।

आखिर मामला क्या है? सुनते हैं कि आज नियागरा जल प्रपात धंस जायेगा। याने जल प्रपात की ऊंची जमीन धंस कर नीचे आ जायेगी। इसी को देखने के लिए भीड़ जमी है। कनेक्टिकट के ब्रिजवाटर के निवासी पेंट सेंट जान ने इस रोमांचकारी खबर को जन्म दिया था। सुनते हैं कि वह एक बहुत बड़ा ज्योतिषी है। उसने भविष्यवाणी की थी कि—आज २२ जुलाई १९७९ को नियागरा जल प्रपात ४ बज कर ५६ मिनट पर धंस जायेगी और इसके फलस्वरुप उस वक्त पर्यटकों को लेकर नदी में घूमने वाली पर्यटन नौका डूब जायेगी। इस भविष्यवाणी के स्थानीय टेलीविजन द्वारा प्रसारित होने के बाद पूरे देश में हंगामा खड़ा हो गया। दूसरी ओर १३ जूलाई १९७९ को भूकम्प के विशेषज्ञों ने नदी के बीच पत्थर पर लगायी गयी सीस्मिक अलार्म में १/४ इंच संचलन देखा। यह खबर भी साथ में फैल गयी। इससे खतरे की आशंका और भी बढ़ गयी।

अचानक उन हजारों दर्शकों के बीच से एक पतला-दुबला, सिर पर हल्के मिट्टी रंग के बालों वाला एक मध्य वयस्क व्यक्ति एक १३ साल उम्र के लड़के को साथ लेकर जेट्टी की ओर बढ़ने लगा। दोनों लोग 'मेड़ ऑफ द मिस्ट' नामक स्टीमर पर चढ़ गये। भविष्यवाणी की गयी थी कि यही स्टीमर आज डूबेगी। यह दुस्साहसी नास्तिक व्यक्ति कौन है? सभी लोग यही सवाल कर रहे थे। पता चला कि उस सज्जन का नाम है पॉल कुरतज और उसके साथ में था उसी का बेटा जोनाथन।

'क्या आप को डर नहीं लगता?' स्टीमर की यात्रा आरम्भ होने के पहले एक संवाददाता ने पॉल से पूछा।

'कुछ नहीं होगा।' पॉल कुरतज ने कोई परवाह नहीं की।

कहना न होगा कि अंततः कुछ भी नहीं हुआ।

पॉल कुरतज अलौकिकता के बकवास और कुसंस्कारों के खिलाफ जो लड़ाई चलाये जा रहे हैं, उसी की एक कहानी मैंने सुनाई है। सच कहा जाये तो पॉल कुरतज

और उसके कुछ सहयोगियों ने वैज्ञानिक जिहाद का एलान कर दिया है। जहाँ भी किसी अलौकिक घटना की खबर पाते ही वे वहाँ जुट जाते हैं, जब तक वे यह साबित नहीं कर पाते कि उसमें अलौकिक कुछ भी नहीं है तब तक वे हाल छोड़ते नहीं। इनकी "बदमाशी" के चलते उड़न तश्तरी, थॉट रीडिंग (विचार पढ़ना), भुतहा घर, अन्य ग्रहों के इन्सान-देवता, मोहिनी विद्या और बर्मूडा ट्रेंगिल जैसे रसीले गपों का मजा किरकिरा होता जा रहा है। कितनी मुश्किल से यह सब गप खड़ा करना पड़ता है और उसे ये रसिकताहीन लोग बिलकुल नहीं समझते हैं।

पॉल कुरतज कहते हैं, "मैं नास्तिक हूं। अगर कोई झूठ फैलाये तो उसे पकड़ने के लिए कुछ लोगों की जरूरत है।" इसीलिए पॉल कुरतज अपने कुछ दोस्तों को लेकर एक संस्था खड़ी कर रहे हैं, जिसका नाम है "कमेटी फॉर द साइंटिफिक इन्वेस्टिगेशन ऑफ क्राइम्स आफ द पैरानार्मल" (अलौकिक घटना संबंधी दावों के संबंध में — वैज्ञानिक अनुसंधान कारी कमेटी)।

१९७५ ई० में कुरतज ने खुद की संपादित 'द ह्यूमेनिस्ट' नामक पत्रिका में एक वक्तव्य छापा था जिसमें १९२ प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने हस्ताक्षर किये थे, उनमें १९ नोबेल पुरस्कार प्राप्त लोग थे। इस घोषणा में वैज्ञानिकों ने दावा किया कि ज्योतिष शास्त्र एक अवैज्ञानिक विद्या है। वक्तव्य के एक अंश में उन्होंने लिखा : जन्म-लग्न में ग्रह और तारे प्रभाव डालते हैं और उसी के अनुसार हमलोगों का भविष्य निर्धारित होता है — इस प्रकार की धारणा पूरी तरह गलत है। उस समय नास्तिक वैज्ञानिकों के इस वक्तव्य पर काफी हंगामा हुआ था।

१९७९ के जनवरी महीने में पॉल कुरतज और उनकी कमेटी ने एन०बी०सी० टेलीविजन कम्पनी के खिलाफ एक मामला दायर किया था। १६ जनवरी को टेलीविजन में एक अनुष्ठान आयोजित किया गया था, जिसका शीर्षक था, 'द एमेजिंग वर्ल्ड आफ साइकिक फेनोमेना' (मानसिक कार्यकलापों की आश्चर्य जनक दुनिया)। कुरतज और उनके साथियों ने कहा कि ये लोग अलौकिक दावों को वैज्ञानिक पद्धतियों से जाँचे गये सत्य कह कर जो दुष्प्रचार करते हैं वह अनैतिक और गैर-कानूनी काम है। हाँ, हमें मामले के नतीजों की जानकारी नहीं है।

५४ वर्षीय पॉल कुरतज की भाषा में : "देखिये, इस देश (अमरीका) के ५४ प्रतिशत लोग 'यू०एफ०ओ०' के (अनआइडेंटिफाइड फ्लाइंग अबजेक्टस याने उड़न तश्तरी किस्म के अन्य ग्रहों की अज्ञात चीजें) अस्तित्व पर विश्वास करते हैं। मनुष्य ने सोच बिचार करने की क्षमता खो दी है। जो उन्हें दिया जा रहा है वे उसी को बत्तख और

मुर्गियों की तरह निगल जा रहे हैं। मनुष्य विश्वास करने लायक कुछ न कुछ चाहता है। और देखियेगा कि इसी कारण पूरे देश के पैमाने पर एक उद्योग खड़ा हो रहा है जो ठीक माँग के अनुसार 'अलौकिकता' की आपूर्ति करता जा रहा है—साबुन अथवा खाद्य पदार्थों की तरह सुन्दर कागज में लपेट कर।"

पॉल कुरतज का कथन कोई बढ़ा चढ़ा कर कही गयी बात नहीं है। यह बात अखबारों के कुछ शीर्षक और सिनेमा तथा चटपटी किताबों के शीर्षकों के देखने ही से समझा जा सकता है। अखबार वाले प्रमुखता के साथ घेरकर खबर छाप रहे हैं—'यू०एफ० ओ० द्वारा मोटर गाड़ी पर हमला', 'सम्मोहन द्वारा ६ आदमी का इलाज', 'दस प्रमुख ज्योतिषियों की भविष्यवाणी' आदि। उसके बाद सिनेमा देखिये — 'द एग्जोसिसिस्ट', 'द एमिटिबल हॉरर', 'एलियन', किताबें भी हैं—'बार्मुडा ट्रैंगिल', 'चैरियटस आफ द गाडस', 'लिंडा गुडमैन्स लव साइन्स', आश्चर्य की बात है कि जहाँ विदेशी मुद्रा के संकट के चलते अच्छी किताबों और अच्छे फिल्मों का अपने देश में आयात किया नहीं जा पा रहा है, जहाँ आज भी बंगाली में टॉलस्टॉय का 'वार एण्ड पीस', डार्विन का 'ओरिजिन ऑफ स्पेसीस' अथवा गैमो का 'वन, टू, थ्री इनफिनिट' का पूरा अनुवाद नहीं हुआ, वहाँ उपरोक्त फिल्म बाजार पर छाये जा रहे हैं, दानिकेन और अधिक किताब नहीं लिख रहा है, और इस दुख से धंधा खतम होने के चलते कई प्रकाशकों की नींद हराम हो गयी है।

पॉल कुरतज ने दूसरे महायुद्ध के दौरान अढ़ाई साल संयुक्त राज्य अमरीका की सेना में काम किया था जब पैटन की उस विख्यात थर्ड आर्मी ने डाचाउ और बूखेनभांड के कन्सेंट्रेशन कैंप को दखल कर लिया तब कुरतज उस अमरीकी सेना में थे। कुसंस्कार, वितंडवाद, अवैज्ञानिक सोच, और प्रचार माध्यमों के कुत्सित प्रचार का क्या नतीजा होता है, इसे उस वक्त उन्होंने गहराई से समझा। आदमी को मारने वाले चूल्हे, गैस चैम्बर, कटीले तारों वाले घेरे, हजारों लोगों के कब्रगाह और मात्र कंकाल बने हुए लाखों रोगी और अधमरे लोग। ये सारी चीजें इस बात की गवाही देते हैं कि किस प्रकार सत्ता लोलुप शासक वर्ग धर्मांधता, कुरंतस्कारों और अवैज्ञानिक नजरिया का इस्तेमाल सुनियोजित योजना के तहत प्रचार माध्यमों की सहायता से अपने स्वार्थ में करते हैं। उसके बाद से कुरतज की एक मात्र चिंता यही रही कि विज्ञान पर आधारित तर्कसंगत विचार शक्ति को खतम करने नहीं दिया जायेगा। अलौकिक कार्यकलापों का प्रचार और गपबाजी ने कुरतज को आतंकित कर दिया। वह इसे केवल मजा लेने की बातों के रूप में मानने से इनकार कर दिया, उनकी राय में इस गपबाजी को सच कहकर चला देने का मतलब है इन्सान की स्वतंत्र विचार क्षमता को खत्म कर देना, विकृत कर देना। इसके फलस्वरूप आदमी तर्क के आधार पर सोचना नहीं सीखेगा। और निरंकशतावादी शासक लोग वैसे ही लोगों को

चाहते हैं। ये शासक वर्ग जाति भेद की भावना को फैलाते हैं और हमेशा जनता के सिर पर पैर रखकर साम्राज्य विस्तार का स्वप्न देखते रहते हैं। कुरतज ने दूसरे विश्वयुद्ध के बाद कोलम्बिया विश्वविद्यालय से पी० एच डी० की डिग्री हासिल की।

कुरतज का लायक चेला है जेम्स रैंडी। रैंडी का काम है अंधविश्वास फैलाने वालों को पकड़ना। कहीं भी कोई अलौकिक क्षमता वाले व्यक्ति की बात सुनते ही रैंडी वहाँ पहुंच जाते हैं। उसके पास १०००० डालर का एक चेक रहता है। वह चुनौती देता है कि "अगर कोई किसी शुद्ध अलौकिक क्षमता को मेरे सामने दिखावे तो मैं उसे १०००० डालर (अमरीकी) दूंगा।" रैंडी १५ साल से चेक जेब में लेकर घूम रहे हैं, लेकिन अबतक उसका हकदार अपने को कहने वाला कोई नहीं मिला। इस बीच उन्होंने दर्जनों टेलीपैथी और चमच टेढ़ा करने वाले उस्तादों को परास्त किया। अलौकिक क्षमता की दुनिया के गुरु यूरी गेलर रैंडी के साथ भेंट करने के लिए भी तैयार नहीं हुए। एक बार सुना गया कि सूजी कटरेल नाम की एक युवती ताश के पीछे का पहलू देखकर ही बता दे सकती है कि पत्ता कौन सा है। रैंडी ने उसे खेल दिखाने के लिए आमंत्रित किया। रैंडी ने सूजी के खेल दिखाने वाले कमरे में गुप्त रूप से एक वीडियो कैमरा रख दिया। जब सूजी ने दर्शकों को खेल दिखाना शुरू किया तो रैंडी उसके तमाम तरकीबों पर नजर रखते रहे और आसानी से उसके तरीके को पकड़ लिये। इसके पहले सूजी ने जानी कारसन नामक एक जादूगर को बेवकुफ बनाया था। अंततः नतीजा यह हुआ कि सूजी ने रैंडी के सामने ८० बार खेल दिखाया और हर बार उसने गलत ताश बताया। उस दिन सूजी रोते-रोते भाग गयी थी। उसकी दैवी शक्ति का इस तरह मजाक उड़ाना तो ईश्वर का ही अपमान करना है, कहकर शायद सूजी ने रैंडी को अभिशाप दिया होगा। सूजी को इस प्रकार कोई भी नीचा नहीं दिखा सका था। इस घटना से भगवान में विश्वास रखने वालों को तकलीफ हो सकती है लेकिन काफी लोग उस दिन गहराई से इस बात को समझ लिये कि रैंडी जैसे लोग ईश्वर से भी बलवान होते हैं।

स्रोत—सायंस डाइजेस्ट, १९८०, बसंत अंक।